अध्याय : 1

कालिदास : व्यक्ति, परिवेश और साधना

अध्याय : 1

कालिदास : व्यक्ति, परिवेश और साधना

भूमिका

संस्कृत कविकुल शिरोमणि कालिदास विश्वविख्यात कवि और नाटककार हैं। कालिदास का जीवन उनके साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्रतिबिंबित हुआ है। कवि और नाटककार के रूप में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह कवि की आत्माभिव्यक्ति का सार सर्वस्व है। कालिदास के अविर्भाव तथा जन्मस्थान के बारे में निश्चित जानकारी प्राप्त न होने से इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। लेकिन इतना सही है कि भारत के ही नहीं, विश्व के अनेक विद्वान कालिदास को विश्व के श्रेष्ठ साहित्यकार मानते हैं। यद्यपि "ऋतुसंहार" कालिदास की प्रथम रचना है तो "अभिज्ञान-शाकुन्तल" अन्तिम रचना है। कालिदास साहित्य में उनका भावपक्ष जितना प्रबल है उतना ही कलापक्ष भी। भावपक्ष और कलापक्ष का मणिकांचन योग उनका अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक है। उनका "मेघदूत" संस्कृत [illegible]काव्य का दीपस्तंभ है। कालिदास के साहित्य के कलापक्ष में प्रकृति-चित्रण, प्रेमभावना और सौन्दर्य-सुषमा लाजवाब है। "काव्येषु नाटकं रम्यम्", "उपमा कालिदासस्य आदि उक्तियाँ उनकी साहित्य साधना का निचोड़ है।

जीवन-वृत्त

महाकवि कालिदास के जीवनवृत्त संबंधी ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है। स्वयं कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में अपने जीवनविषयक जानकारी नहीं दी है। तथापि कालिदास के साहित्य में वर्णित इतिहास, संस्कृति, जनजीवन पूर्वकवियों का उल्लेख कला पक्ष की विशिष्टता आदि के आधार पर विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से कालिदास के जीवन-वृत्त को संजोया सँवारा है। और इसीकारण कालिदास

की जन्मतिथि, उनका जन्मस्थान आदि के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। उनके जीवनवृत्त पर संक्षेप में कुछ प्रकाश इस प्रकार डाला जा सकता है।

कतिपय विद्वानों का अभिमत है कि वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था और उनका पालन-पोषण एक ग्वाले ने किया था। उनके ग्रन्थों से ऐसा लगता है कि उन्होंने भारतवर्ष का सम्यक् पर्यटन किया होगा। उनकी रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि उनका जीवन विलासमय रहा होगा।

कालिदास ने वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शनों, रामायण, महाभारत पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, काव्यशास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया था। वे चित्रकला के भी पण्डित थे। उन्होंने पटचित्र, फलकचित्र और भित्तिचित्रों का उल्लेख किया है। वे लौकिक आचारों और व्यवहार से पूर्ण परिचित थे। उन्हें भूगोल का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्य में अध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ही पहलुओं को प्रस्तुत कर श्रेय एवं श्रेय के प्रति सहज सामंजस्य संस्थापित किया है। उनकी काव्य-प्रतिभा असाधारण है।[1]

कालिदास का आविर्भाव

महाकवि कालिदास ने अपनी जन्मतिथि या जन्म-ग्राम के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं दी है। तथापि विद्वानों ने कालिदास के साहित्य में निहित कुछ बातें तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर कालिदास का आविर्भाव तथा जन्मतिथि के बारे में अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। इस संबंध में मुख्यतया तीन मत व्यक्त हुए हैं -

1. ई.स.पूर्व प्रथम शताब्दी

भारतीय संस्कृति में विक्रम संवत् को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विक्रम सवंत् राजा विक्रमादित्य द्वारा माना जाता है। यह विक्रम संवत् ई.स.पूर्व 57

माना जाता है। इसी आधार पर सर विलियम जोन्स ने कालिदास को विक्रमादित्य की सभा में वर्तमान मानकर कालिदास का समय ई·स·से कुछ पूर्व माना है। क्योंकि विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित विक्रम संवत् इसवी सन से 57 वर्ष पूर्व है।[2] डॉ·राजबली पाण्डेय, प्रो·जी·सी·झाला, प्रो·चट्टोपाध्याय, रायबहादूर, चिंतामणी आदि विद्वानों ने महाकवि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी माना है। डॉ·राजबली पाण्डेय ने कालिदास का आश्रयदाता विक्रमादित्य माना है। यह विक्रमादित्य विक्रम संवत् का प्रवर्तक है। तथा उसने शकों को पराजित किया था। शकों को पराजित करना एक क्रांतिकारी घटना थी। और इसके फलस्वरूप लगभग डेढ सौ वर्षों तक भारत वर्ष शकों के अधिपत्य से सुरक्षित रहा। इसलिए इस विजय के उपलक्ष्य मे संवत् का प्रवर्तन हुआ। और मालवगण के दृढ होने से इसका गणनाम "मालवगणस्थिति" या "मालवगणकाल" पडा।[3]

2· ईस्वी सन छठी शताब्दी

फर्ग्युसन, डॉ·हार्नली आदि विदानों के मतानुसार कालिदास मालवराज, यशोधर्मन के समकालीन थे। जिसने छठी शती में हूणों पर विजय प्राप्त की थी। तथा हूणों पर प्राप्त विजय की स्मृति में 600 वर्ष पहले की तिथि देकर मालव संवत् का आरम्भ किया था, जो बाद में विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया ये लोग अपने मत के पक्ष में रघुवंश के चतुर्थ सर्ग से रघु-दिग्विजय में हूणों का वर्णन उपस्थित करते हैं। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि यद्यपि चौथी शती में हूण भारत में नहीं आये थे, तथापि उत्तर पश्चिमी सीमा में आ चुके थे और कालिदास ने उनका वर्णन वहीं किया है। कालिदास को छठी शती ईसवी में मानने की धारणा अब खण्डित हो चुकी है।[4]

3· गुप्तकाल

तीसरा मत कालिदास को गुप्तकाल में मानता है। डॉ·भोलाशंकर व्यास ने लिखा है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही राजकवि थे। इस मत की पुष्टि में उन्होंने अन्य विदानों तथा कालिदास के साहित्य के आधार पर कालिदास के

आविर्भाव को स्पष्ट किया है -

(क) कालिदास में कुछ ऐसे ज्योतिःशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों, तथा "जामित्र" आदि का प्रयोग मिलता है, जो भारतीय ज्योतिष को यवनों की देन है, (ख) कालिदास का रघुदिग्वजिय समुद्रगुप्त के दिग्विजय का संकेत करता है, (ग) कालिदास के नाटक "विक्रमोर्वशीय" का नामकरण सम्भवतः चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का संकेत करता है तथा "कुमारसम्भव" की रचना कुमार गुप्त के जन्म पर की गई होगी, (घ) मालविकाग्निमित्र का अश्वमेध यज्ञ समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ का व्यंजक हो सकता है, (ड) शैली की दृष्टि से कालिदास की रचना निश्चित रूप में अश्वघोष से परवर्ती है, (च) कालिदास स्वयं अपने मालविकाग्निमित्र में भास, सौमिल्ल तथा कविपुत्र संकेत करते हैं, वैसे इन कवियों की निश्चित तिथि का पता नहीं, पर भास का समय उसके नाटकों की प्राकृत के आधार पर ईसा की दूसरी शती माना जा सकता है, (छ) वातास भट्टि के मन्दसौर शिलालेख की शैली से पता चलता है, कि वह कालिदास का ऋणी है। मन्दसौर का शिलालेख 473-4 ई॰का है। इससे यह अनुमान हो सकता है कि , कालिदास इससे पुराने हैं, (ज) ऐहोल के शिलालेख में कालिदास तथा भारवि का नाम मिलता है, जो 634 ई॰का है।"[5]

इस सब विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रघुवंश आदि सात काव्यों (तीन नाटकों व चार काव्यों) के रचयिता "दीपशिखा" कालिदास चौथी शती के आस-पास रहे होंगे।

डॉ॰भगवत्शरण उपाध्याय कालिदास का आविर्भाव गुप्तकाल में मानते हैं। गुप्तकाल को भारत का "स्वर्णयुग" माना जाता है। उनका कथन है कवि की गुप्तकालीन संस्कृति के साथ इतनी घनी एकता है कि उसका चौथी-पांचवी सदी का होना निश्चित लगता है। उसके काव्य पर अश्वघोष का प्रभाव, गुप्तकालिक समानान्तरता, विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त) की संरक्षा, गुप्तयुगीन उदार सहिष्णुता और सामाजिक शान्ति तथा समृद्धि सभी कुछ कवि को भारतीय इतिहास के इस स्वर्ण-युग का ही अप्रतिम नक्षत्र प्रमाणित करते हैं। डॉ॰भगवत्शरण उपाध्याय के अनुसार कालिदास का जन्मकाल 365 ई॰के लगभग और मृत्युकाल 445 ई॰के लगभग रहा

जा सकता है।[6]

डॉ·रमाशंकर तिवारी ने अपने डी·लिट के बृहत् शोध-प्रबंध में लिखा है कि सम्राट स्कंदगुप्त के पितामह सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (पराक्रम के सूर्य) अपने राज्य काल में सुराष्ट्र के शकों के साथ-साथ पश्चिमी मालवा पर विजय प्राप्त की। डॉ·तिवारी ने यह भी लिखा है कि इतिहासकारों के अनुसार गणराज्यों का पूर्ण उच्छेद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ही किया। अतः कालिदास का आविर्भाव मुख्यतया चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय ही मानना उचित होगा। डॉ·तिवारी के अनुसार कालिदास ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्याश्रय में अपने ललित एवं रसवर्षी काव्यों की प्रणयन किया। चन्द्रगुप्त का शासनकाल 375 ई·से·413 ई·तक व्याप्त है। अतएवं कालिदास का स्थितिकाल ईसा की चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध और पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच रहा होगा।[7]

डॉ·एस·बी·कीथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "संस्कृत ड्रामा" में स्पष्ट किया है कि उज्जयिनी के सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में कालिदास की साहित्य-साधना संपन्न हुई है। डॉ·कीथ ने यह भी सूचित किया है कि विक्रमादित्य उपाधि के आधार पर कालिदास ने "विक्रमोर्वशीय" शीर्षक अपने नाटक को दिया होगा तथा "कुमारसम्भव" शीर्षक कुमार गुप्त के जन्म को सूचित करने वाला होगा।[8]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास का आविर्भाव गुप्तकाल में विशेषतः चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में मानना अधिक समीचीन होगा।

कालिदास का जन्मस्थान

जिस प्रकार कालिदास की जन्मतिथि के बारे में मतभेद हैं उसप्रकार कालिदास के जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों में दो प्रमुख मतभेद दिखाई पडते हैं। कुछ विद्वान कालिदास को कश्मीर के निवासी मानते हैं तो कुछ विद्वान उसे मालव-निवासी मानते हैं। इन मतों के अतिरिक्त कुछ विद्वान कालिदास को बंगाली, विदर्भ निवासी तथा मैथिली निवासी मानने के पक्ष में हैं।

1· **बंगाल के निवासी**

बंगाल के कुछ साहित्यिक कालिदास को बंगाल के निवासी मानते है। इस संबंध में उन्होंने कुछ तर्क दिये हैं -

§1§ बंगाली काली के भक्त होते हैं और कवि कालिदास भी काली का भक्त था, इसलिए उसका कालिदास नाम उसे बंगाल में उत्पन्न सिद्ध करता है।

§2§ मेघदूत में "आषाढस्य प्रथम दिवसे" का उल्लेख है। बंगाल में तिथि की गिनती एक से लेकर इकतीस तक चलती है। कालिदास ने आषाढ कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा न लिखकर आषाढ़ का प्रथम दिवस लिखा है। अतः कालिदास बंगाली निवासी हैं।

डॉ·रमाशंकर तिवारी ने ये दोनों तर्क निरर्थक माने हैं।[9] उनका कथन है कि "ये दोनों तर्कनायें स्पष्टतया निःसार है। काली का उपासक होने का प्रमाण कवि की रचनाओं में उपलब्ध नहीं होता। और "आषाढस्य प्रथम दिवसे" को लेकर निरर्थक विचार व्यक्त किया गया है।

2· **विदर्भ के निवासी**

कुछ विद्वानों के अनुसार "मालविकाग्निमित्र" की नायिका मालविका विदर्भ की राजकन्या है। 'रघुवंश' में विदर्भ राजकन्या इंदुमती के स्वयंवर और प्रणय का चित्र प्रस्तुत है। "मेघदूत" में वर्णित रामगिरी, वर्तमान, रामटेक, नागपुर के पास स्थित है। कवि ने वैदर्भी रीति में काव्य लिखा है। इसीकारण कवि का निवास-स्थान विदर्भ माना है। डॉ·चन्द्रबलि पाण्डे[10] ने "रघुवंश" में वर्णित -

"पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्" - §"रघुवंश",9/1§

"कौशल्य इत्युत्तरकोशलानां" - §"रघुवंश",18/27§

के आधार पर लिखा है कि कालिदास ने उत्तर कोशल पद का शब्दप्रयोग इसलिए किया है कि कालिदास दक्षिण कोशल अर्थात् महाकोशल से भिन्न व्यक्ति हैं। निष्कर्षतः कालिदास का विन्ध्य भूमि में निवास करने वाले वैदर्भ कवि हैं।

3· विदिशा के निवासी

हरप्रसाद शास्त्री और प्रो·परांजपे ने "मेघदूत" में जो विदिशा का वर्णन किया गया है उसके आधार पर कालिदास को विदिशा का निवासी माना है।

इस संदर्भ में डॉ·रमाशंकर तिवारी ने लिखा है कि "कालिदास ने न तो विदर्भ और न तो विदिशा का ही कोई तन्मयतापूर्ण वर्णन किया है। उनके दाक्षिणात्य संस्कारों की प्रतिध्वनियाँ भी उनकी रचनाओं में इतनी स्पष्टतया मुखरित नहीं है कि उन्हें "दक्षिण का जीवन" घोषित किया जा सके। "उत्तरकोशल" पद के प्रयोग की खोज भी कोई "दृढ-प्रमाण" नहीं कहा जा सकता।[11]

4· मिथिला के निवासी

संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के तत्कालीन कुलपति "श्री·आदित्यनाथ झा" ने अपने एक लेख में लिखा है कि "दरभंगा जिले में बेनीपट्टी के अंतर्गत "उच्चैठ" गाँव में भगवती दुर्गा की एक प्राचीन मूर्ति है। उससे पूर्व-दक्षिण की ओर एक ऊँचा टीला है जो अत्यंत प्राचीन काल से कालिदास के विद्यापीठ के नाम से प्रसिद्ध है। दुर्गा मूर्ति की उपासना विद्या-वरदात्रि के रूप में की जाती है। लेखपालों के दस्तावेजों में इस भूमि का अंकन कालिदास के नाम से ही उपलब्ध है। जनश्रुति के अनुसार कालिदास ने यहीं विद्या प्राप्त की थी। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास की जन्मभूमि कहीं इसी के आस-पास होगी।"[12] इस संदर्भ में डॉ·रमाशंकर तिवारी का कथन है कि कालिदास ने मिथिला की प्रकृति वहाँ के जनसमुदाय और मैथिली की सौन्दर्यवती कुमारियों का सचेष्ठ वर्णन अपनी रचनाओं में नहीं किया है। अतः मिथिला को कवि का जन्मभूमि मानने के लिए कोई आधार वर्तमान नहीं है।[13]

5· कश्मीर के निवासी

प्रो·लक्ष्मीधर कल्ला, पंडित सूर्यनारायण व्यास आदि विद्वानों ने कालिदास को कश्मीर का निवासी माना है।

प्रो·लक्ष्मीधर कल्ला ने अपने ग्रंथ "कालिदास का जन्मस्थान" (The Birth Place of Kalidasa) में लिखा है कि "कुमारसम्भव" में हिमालय का अत्यंत सूक्ष्म तथा विषद वर्णन हुआ है। मेघदूत के यक्ष की जन्मभूमि अल्का हिमालय में अवस्थित थी। "विक्रमोर्वशीय" में पुरूरवा और उर्वशी तथा "कुमासम्भव" में शिव तथा पार्वती - दोनों जोडों की प्रणय-लीला गन्धमाद्न पर्वत पर हुई थी। वसिष्ठ, कण्व तथा मारिच सभी ऋषियों के आश्रम हिमालय पर्वत पर ही बसे है। इन उल्लेखों से कवि के हिमालय-प्रेम की सहज जानकारी दिखाई पडती है। "मेघदूत" मे अल्का कैलास पर स्थित बताई गयी है। यह कैलास कश्मीर का "हरमुकुट" नामक पर्वत है। अलका में स्थित यक्ष के भव का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। "मेघदूत" में वर्णित कुबेर का प्रासाद "मयग्राम" होगा। यह मयग्राम कश्मीर में है। अतः कहा जा सकता है कि कालिदास कश्मीरी थे।"[15]

पं·सूर्यनारायण व्यास ने "विश्वकवि कालिदास एक अध्ययन" नामक अपने ग्रंथ में यह स्थापित किया है कि अलका काल्पनिक नहीं, अपितु वास्तविक नगरी है जो इतिहास में सर्वदा अपने पार्थिव वैभव के लिए प्रसिद्ध रही है। पंडित व्यास आगे लिखते हैं कि कालिदास ने पुराण-स्त्रष्टाओं के समान स्वीकार किया है कि कुबेर धनपति है और यक्षों का स्वामी है। हिम-पर्वतमाला के उत्तर भाग में स्थित एक सुवर्णगिरी स्थान है जो पुराण काल में धनिकों की और विशेष रूप से यक्षों की आवास-भूमि रहा है। यही सुवर्णगिरी कालिदास की अलका है।

इस मत पर सबसे बडा आक्षेप यह लिया जाता है कि कवि कल्हण ने अपनी "राजतरंगिणी" में साधारण से साधारण कश्मीरी कवि का उल्लेख किया है लेकिन कालिदास का उल्लेख नहीं किया है अतः कालिदास को कश्मीरी कवि मानना उचित नहीं।"[16]

6· <u>मालवा के निवासी</u>

कालिदास विरचित "मेघदूत" काव्य में कवि ने उज्जयिनी का वर्णन किया है और उस वर्णन में उज्जयिनी·····

के प्रति विशेष आदर और आत्मीयता दिखायी है। उज्जयिनी का वर्णन कवि ने तन्मयता से किया है। वहाँ का वैभव महादेव का मंदिर संध्या आरती के समय होनेवाले वेश्या-नृत्य, रात में अभिसार करने वाली रमणियाँ आदि का आकर्षण चित्रण किया है। इतना ही नहीं, कवि ने इस नगरी को स्वर्ग का एक कांतिमान टुकड़ा माना है, जिसे स्वर्ग में अपने पुण्यों का फल भोगने वाले पुण्यात्मा लोग, पुण्य समाप्त होने के पहले ही, शेष पुण्य के बदले, अपने साथ धरती पर उतार लाये हैं -

"स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां,
शेषैः पुण्यैर्हृतमिवदिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।।"[17]

"मेघदूत" काव्य में कालिदास मेघ से अनुरोध करता है कि रामगिरी से कैलास की ओर जाने में कुछ चक्कर जरूर पड सकती है फिर भी उज्जयिनी को देखकर ही आगे जाने का आग्रह करता है। उस समय कालिदास ने उज्जयिनी का यथार्थ वर्णन किया है -

"वक्रःपन्या यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्ग·प्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्ग·नानां
लोलापाङ्ग·र्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।।"[18]

अर्थात -

उत्तर की ओर जाने में यद्यपि उज्जयिनी वाला मार्ग कुछ टेढ़ा पडेगा, फिर भी तुम उस नगर के राजभवनों को देखना न भूलना। तुम्हारी बिजली की चमक से डरकर वहाँ की स्त्रियाँ जो चंचल चितवन चलावेंगी उन पर यदि तुम न रीझे, तो समझ लो कि तुम्हारा जन्म अकारथ ही हुआ।

प्रो·मिराशी का मंतव्य है - "कालिदास नाम कश्मीरी नहीं है। भामह, रुद्रट, कैयट, मम्मट, कल्ण इत्यादि पण्डितों के उल्लेख "राजतरंगिणी" तथा अन्य ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं, लेकिन कालिदास का नाम इनमें कही नहीं मिलता। यदि कालिदास कश्मीरी के होते, तो कल्हण - जैसा सावधान इतिहासकार इसका

उल्लेख "राजतरंगिणी" में अवश्य किये होता। कालिदास द्वारा वर्णित सभी तीर्थ कश्मीर में ही स्थित नहीं कहे जा सकते। लोकप्रचलित रीति-प्रथाओं का वर्णन कश्मीर से गृहीत माना जा सकता। उ·मेघ मे अलका के सुख, वैभव एवं ऐश्वर्य का जो उल्लासमय चित्रण है, उसमें वास्तविकता का रूप देखना तर्कसंगत नहीं है। इन सब कारणों से कालिदास का कश्मीरी होना प्रमाणित नहीं होता।"[19]

डॉ·ए·बी·कैथ ने
ग्रंथ में यह सिद्ध किया है कि कालिदास ने अपना अधिकतर समय उज्जयिनी में बिताया है। यह उज्जयिनी सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल की राजनगरी थी।[20]

विख्यात इतिहासकार डॉ·भगवत्शरण उपाध्याय का अभिमत है कि "मेघदूत" में जो उसने उज्जयिनी के प्रति विशेष आदर और आत्मीयता दिखायी है, उसके अतिरिक्त भी उसका मध्यप्रदेश की छोटी से छोटी नदियों, पर्वतों, स्थलो और ऋतुओं से इतना घना परिचय है कि कवि को वहाँ का होना मानने में अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं होती। फिर परम्परतः कवि का मालवा के ही किसी विक्रमादित्य की सभा का नवरत्न होना भी इस धारणा की पुष्टि करता है। चाहे जन्म कालिदास का जहाँ भी हुआ हो, इसमें संदेह नहीं कि उसका गहरा संबंध मालवा से दीर्घकाल तक बना रहा था।"[21]

डॉ·रमाशंकर तिवारी के अनुसार - "कालिदास का जन्म कश्मीर में हुआ था और यौवन का स्वर्णोपरम पूर्वार्ध उसके मनोरम अंचल में व्यतीत हुआ था। परिस्थितियों की चपेट में उसे अपनी जन्मभूमि छोडनी पडी और सौभाग्य से उसे उज्जयिनी की राजपरिषद का वैभवपूर्ण वातावरण प्राप्त हो गया जहाँ से उसने अपने ललित वाड्·मय का आलोक विच्छुरित किया। अतएवं, यह माना जा सकता है कि कश्मीर कवि की जन्मभूमि तथा मालवा उसकी कर्मभूमि रही है।"[22]

उपर के विवेचन से इतना कहा जा सकता है कि कालिदास सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का राजाश्रित कवि था। राजाश्रित सम्मानित कवि था। ·कश्मीर

और मालवा {उज्जयिनी} दोनों भूप्रदेशों से उसका अतीव लगाव रहा है। और उन प्रदेशों के नर-नारियों का, राज-प्रासादों का, लोककथाओं का प्रणय का, प्रकृति का वर्णन करने में कवि सिद्धहस्त हुआ है। उसकी अधिकतर काव्य-रचना उज्जयिनी में संपन्न मानी जा सकती है। गुप्तकाल को भारत "स्वर्णयुग" कहा जाता है। और उसीका अत्यधिक रसाग्राही वर्णन कवि की प्रतिभा का अत्युच्च बिंदु है।

किंवदन्ती - 1

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। एक किंवदन्ती के अनुसार महाकवि कालिदास प्रारम्भ में अत्यन्त मूर्ख थे। कहा जाता है कि वे अपनी पत्नी की न्यकृति से वैदुष्य को प्राप्त हुये थे। कालिदास के समय में राजा शारदानन्द की कुमारी पुत्री विद्योत्तमा की विद्या की धाक थी। उसमें अनिन्द्य सौन्दर्य तथा वैदुष्य का मणिकांचन योग था। उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जो व्यक्ति उसे शास्त्रार्थ में परास्त कर देगा, उसी को पति के रूप में वरेगी। उसके ललित लावण्य के लोलुप अनेक पण्डिती ने प्रयत्न किये परन्तु उसकी विदता ने उन सबको परास्त किया। अतः पण्डितों ने खीझकर उसका विवाह एक मूर्ख से करने का ठान लिया और विद्योत्तमा को चातुर्यपूर्ण मनगढन्त सांकेतिक उत्तरों की व्याख्या के द्वारा फँसाकर पण्डितों ने उसे कालिदास को जिसे किवदन्ति के अनुसार महामूर्ख बताया गया है उसके गले बाँध दिया।

विवाह के बाद एक दिन दोनों भवन के ऊपरी प्रकोष्ठ में बैठे हुए थे, उस समय ऊँट को देखकर कालिदास से नहीं रहा गया और वे उट्र उट्र चीखने लगे। विद्योत्तमा पण्डितों के षड्यंत्रों का समझ गई। क्रोध से उसने कालिदास को वही से धकेल दिया। कहते हैं कि कालिदास नीचे काली देवी के ऊपर जा गिरे और उनकी जीभ कटकर देवी के ऊपर गिर पडी। भगवती काली उन पर प्रसन्न हो गई और बोली "वरं ब्रूहि"। वह मूर्ख विद्योत्तमा के उच्चारण में असमर्थ होने से "विद्या" बोल पड़ा। भगवती ने "एवमस्तु" कह दिया, जिसके फलस्वरूप वह मूर्ख, कालिदास हो गया।

पाण्डित्य प्राप्ति के पश्चात् कालिदास विद्योत्तमा के घर पहुँच कर, बाहर से बोले - "अनावृतकपाटं द्वारं देहि।" जिसे सुनकर विद्योत्तमा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उसने कहा "अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः।" कालिदास ने अपनी विशेषता को दिखलाने के लिए "अस्ति" पद से "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" इस प्रकार से प्रारम्भ करके "कुमारसम्भव" नामक महाकाव्य की रचना की। "कश्चिद्" पद से "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" से प्रारम्भ होने वाला "मेघदूत" नामक खण्डकाव्य की रचना की और "वाक्" पद से "वागर्थाविव संपृक्तौ" से प्रारम्भ होने वाले 'रघुवंश' नामक महाकाव्य की रचना की।

परन्तु विद्वान लोग इस किंवदन्ति पर श्रद्धा नहीं रखते हैं क्योंकि एक विदुषी राजपुत्री बगैर छानबीन किये एकाएक किसी साधारण पुरुष से विवाह कर ले यह सहज सम्भव नहीं। साथ ही विद्योत्तमा के प्रश्न के उत्तर में लिखे गये ग्रन्थों में कालिदास का सर्वोत्कृष्ट नाटक रत्न "अभिज्ञानशाकुन्तल" नहीं आता है।[23]

किंवदन्ती-2

किंवदन्ति के अनुसार कालिदास को लंका के राजा कुमारदास का मित्र माना गया है। कहते हैं कि कुमार दास ने एक वेश्या को एक समस्या की पूर्ति पर प्रचुर सुवर्ण देने को कहा। समस्या इस प्रकार थी -

"कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।"

अर्थात् कमल में कमल की उत्पत्ति सुनी तो जाती है परन्तु देखी नही जाती है। रसिक कवि कालिदास भी उस वेश्या के यहाँ पहुँचे। उस वेश्या ने उनके समक्ष उक्त समस्या रख दी -

"बाले तव मुखाम्भोजे कथामिन्दीवरद्वयम।।"

समस्या की पूर्ति हो जाने पर उस वेश्या ने स्वर्ण राशी के लालच से महाकवि की हत्या कर दी और उस रचना को लेकर कुमारदास के पास पहुँची। उसे सुनकर कुमारदास तुरन्त ही ताड़ गये कि यह रचना कालिदास की ही है। उन्होंने वेश्या

को कठोर दण्ड की धमकी दी जिससे डर कर उसने सारे वृत्तान्त को कह सुनाया। महाकवि कालिदास के वध को सुनकर कुमारदास अत्यन्त दु:खित हुए और कालिदास की ही चिता में जल मरे।

इस किवदन्ति पर भी सुधीजनों को सन्देह है। यद्यपि कालिदास ने वेश्याओं का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में वेश्या के द्वारा मृत्यु की पुष्टि नहीं होती।[24]

विवाह

विख्यात जैन विद्वान "मेरूतुंगाचार्य" ने यह लिखा है कि अवंति के राजा विक्रमादित्य की पुत्री प्रियंगुमंजरी जब पढ-लिखकर पंडित हो गई तब यौवन-मद के कारण उसे अपने आचार्य वररुचि से परिहास की सूझी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने उसका गर्व चूर करने के लिये किसी प्रकार उसका विवाह एक महामूर्ख पशुपाल से कर दिया। जब भेद खुला तब भर्त्सना के अतिरिक्त "प्रियंगु" के लिए और क्या रह गया था। पशुपाल भी अपनी आराधना से कालिदास बन गया।[25]

डॉ॰रमाशंकर तिवारी का कथन है - "कालिदास की पत्नी अवश्य राजकुल की रही होगी और उसके रूप, विभव तथा ऐश्वर्य के उपभोग का उन्हें पुष्कल अवसर प्राप्त हुआ होगा क्योंकि उनकी रचनाओं में सौन्दर्यशालिनी रमणियों का जो अवतरण हुआ है तथा विलास-वैभव का जो उल्लासगर्भित चित्रण हुआ है, वह व्यक्तिगत अनुभव के अभाव में उतनी पूर्णता के साथ, सम्भव नहीं हुआ होता।"[26]

पं॰चन्द्रबली पाण्डे का मंतव्य है कि, कालिदास का विवाह विक्रमादित्य की साहसांक की राजदुहिता से हुआ था और उसके संसर्ग से इनमें कविता का बीज फूटा। एक बात और - कालिदास का कुछ लगाव प्रभावती गुप्ता से प्रत्यक्ष है, उसके पुत्र "प्रवरसेन के लिए "सेतुबन्ध" की रचना उन्होंने नहीं सही, पर उसका संशोधन तो किया ? और वह भी न सही, तो उसके हृदय में कविता का बीज तो बोया ?[27]

ऊपर के विवेचन से कहा जा सकता है कि कालिदास विवाहित थे। और उनकी पत्नी के तीन नाम - विद्योत्तमा, प्रियंगुमंजरी और प्रभावती , बताये गये हैं। हमारे विवेच्य हिन्दी नाटकों में कालिदास की पत्नी का नाम प्रियंगुमंजरी ही बताया गया है।

मातृगुप्त

कल्हण की "राजतरंगिणी" में मातृगुप्त का उल्लेख आया है। उनके अनुसार विक्रमादित्य के दरबार में मातृगुप्त का प्रवेश भृत्य के रूप में हुआ था। इस कार्य से प्रसन्न होकर उन्होंने "मातृगुप्त" को कश्मीर का राज्य दे दिया था। मातृगुप्त को कल्हण ने कवीन्द्र भी कहा है। पंडितों का अनुमान है कि कालिदास ही मातृगुप्त थे। पंडित चन्द्रबली पाण्डे के अनुसार - "मातृगुप्त को कालिदास मानने में कोई बाधा शेष नहीं रह जाती···हमारी दृष्टि में तो यह स्फुट हो गया कि कालिदास और मातृगुप्त एक ही व्यक्ति के दो संकेत हैं - "एक व्यक्ति तथा स्वच्छन्द कवि का प्रतीक है तो दूसरा "शासक" और "प्रतिरूप" का, परंतु काव्य दोनों को इष्ट है। पहला सचमुच कवि का काम करता है तो दूसरा आचार्य का। इसीसे तो परवर्ती लोगों में "कविकुलगुरू" कालिदास है और मातृगुप्त "आचार्य"।"[28] संक्षेप में कहा जा सकता है कि कविवर कालिदास ही राजसम्मान तथा राज्याश्रय के बाद मातृगुप्त अभिधान से महिमामंडित हुए हैं।

कालिदास : एक या अनेक

कालिदास के अप्रतिम नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तथा अपार लोकप्रियता के कारण एक कालिदास के अनेक कालिदास हो गये हैं। दसवींशताब्दी के महाकवि राजशेखर ने तीन कालिदास की ओर संकेत किया है -

"एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु।।"[29]

लेकिन चन्द्रबली पाण्डे ने अपने 'कालिदास' नामक ग्रंथ में यह लिखा है कि वास्तव में "श्रृंगार" ललितोद्गार शब्दप्रयोग में मूलभाव यह है कि यह शब्द कालिदास

के काव्य की विशेषताएँ बताते हैं। चन्द्रबली पाण्डे का कथन है "मालविकाग्निमित्र", "विक्रमोर्वशीय" एवं "अभिज्ञानशाकुन्तल" में शृंगार और ललितोद्गार हैं। अतः राजशेखर के कथन के आधार पर एक कालिदास को तीन कालिदासों में बाँटना ठीक नहीं।[30]

समुद्रगुप्त के द्वारा किये गये वर्णन में "रघुकार कालिदास" नाम प्रसिद्ध है। वस्तुतः रघुकार कालिदास का मूल नाम हरिशेण है। नाटककार के रूप में प्रसिद्ध कालिदास नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तल" का रचयिता माना जाता है। भोज देव के समय में एक कालिदास हुए थे जिनकी उपाधि "परिमल कालिदास" थी। जो नवसाहसाङ्कचरित के रचयिता थे।[31]

कालिदास के काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि उपमा प्रयोग है। कालिदास विरचित रघुवंश में षष्ठ सर्ग में "स्वयंवर वर्णन" में कालिदास ने बताया है कि जब इन्दुमती हाथ में वरमाला लिये किसी राजा के पास पहुँचती है तो वह इसी तरह जगमगा उठता है जैसे रात में संचारिणी "दीपशिखा" के प्रकाश में राजमार्ग का प्रासाद चमक उठता है। और जब वह उसे छोड़कर आगे बढ जाती है, तो वह विवर्ण हो जाता है। यथा -

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।"[32]

उपर के श्लोक में प्रयुक्त "दीपशिखा" शब्द प्रयोग के आधार पर डॉ॰भोलाशंकर व्यास लिखते हैं - "संस्कृत साहित्य के अन्य कालिदासों में रघुवंशादि के रचयिता कालिदास को अलग करने के लिए इन्हें "दीपशिखा" कालिदास कहना विशेष ठीक होगा।"[33]

सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि कालिदास की कृतियाँ सात हैं। काव्यों में "ऋतुसंहार","मेघदूत","रघुवंश" और "कुमारसम्भव" तथा नाटकों में "मालविकाग्निमित्र" "विक्रमोर्वशीय" और "अभिज्ञानशाकुन्तल" है। डॉ॰भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है कि कश्मीरी पंडित क्षेमेन्द्र को एक और काव्य "कुन्तलेश्वरदौत्य" के कवि होने का भी श्रेय दिया है, पर वह कृति उपलब्ध नहीं है।[34] अतः उपर्युक्त सात ग्रंथों

के रचयिता कालिदास हमारे प्रतिपाद्य हैं।

कालिदास की साहित्य-साधना - परिवेश

संस्कृत महाकवि कुलगुरू कालिदास का आविर्भाव सामान्यतया गुप्तकाल में मानना अधिक उचित है। विदेशी और भारतीय विद्वानों ने कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" के दरबार का राजकवि माना है। अतः इस पृष्ठभूमि पर कालिदास की साहित्य की पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि का विवेचन करना हमने उचित माना है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

गुप्त सम्राट

अधिकतर विद्वानों ने कालिदास का आविर्भाव गुप्त काल ही माना है। जैसा कि पहले लिखा गया है गुप्त-काल का मूल पुरूष "श्रीगुप्त" माना जाता है। जिसने भारत के बहुत बड़े भाग में मगध साम्राज्य का फिर से विस्तार किया था। श्रीगुप्त का उत्तराधिकारी महाराज घटोत्कच था। घटोत्कच के बाद चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ। ये गुप्तवंश का प्रतापी राजा था इसलिए उसे महाराजाधिराज भी कहा जाता है। महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त प्रथम बंगाल से प्रारम्भ कर पश्चिम में अयोध्या और प्रयाग तक के विशाल प्रदेश का स्वामी था और लिच्छवियों के सहयोग से ही इस पर अबाधित रूप से शासन करता था।[35]

चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसका पुत्र समुद्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा समुद्रगुप्त की दिग्विजय यात्रा विशेष प्रसिद्ध है। अपनी दिगविजय के उपलक्ष्य में समुद्रगुप्त ने एक विशाल अश्वमेध यज्ञ किया। लंका के राजा "मेघवर्ण" के साथ उसका संबंध मैत्रीपूर्ण था। समुद्रगुप्त की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वह एक उच्च कोटि का कवि, परमनिपुण संगीतज्ञ, सुसंस्कृत विद्वान और अद्वितीय योद्धा था।[34]

समुद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र रामगुप्त गद्दी पर बैठा। परन्तु उसकी हत्या की गयी और तत्पश्चात चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" सिंहासनारूढ हुआ। चन्द्रगुप्त ने अपनी विजयों से अपना साम्राज्य पश्चिम में अरब सागर तट और सौराष्ट्र तक,

पूर्व में बंगाल और असम तक, उत्तर में हिन्दूकुश और हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत कर लिया था। गुप्त साम्राज्य के विस्तार की यह चरमसीमा थी। चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ सफल और सुव्यवस्थित शासन के लिए विविध नगरों को राजधानियाँ बनाया जिनमें पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, अयोध्या और कोशाम्बी विशेष प्रसिद्ध है।[37]

चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि केवल "विक्रमादित्य" ही नहीं थी। शिलालेखों में उसे सिंहविक्रम, सिंहचन्द्र, साहसांक, विक्रमांक, देवराज आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया है। उसके भी अनेक प्रकार के सिक्के मिलते हैं। शक-महाक्षत्रपों को जीतने के बाद उसने उनके प्रदेश में जो सिक्के चलाये थे, वे पुराने शक-सिक्कों के नमूने के थे। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिमी भारत में उसके जो बहुत-से सिक्के मिलते हैं, वे कुशाण नमूने के हैं।[38]

"चन्द्रगुप्त की वीरता उसके सिक्कों द्वारा भी प्रकट होती है। उसे भी सिक्कों पर सिंह के साथ लड़ता हुआ प्रदर्शित किया गया है, और यह वाक्य दिया गया है -

"क्षितिमवजित्य सुचरितैः दिवं जयति विक्रमादित्यः"

पृथिवी का विजय करके अब विक्रमादित्य अपने सुकार्यों से स्वर्ग को जीत रहा है। चन्द्रगुप्त द्वितीय नेक 375-414 ईसवी तक राज्य किया था।[39]

चन्द्रगुप्त द्वितीय के उपरान्त कुमारगुप्त प्रथम स्कन्दगुप्त, पुरुगुप्त, नरसिंह गुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुधगुप्त, वैष्यगुप्त आदि सम्राट हुए। लेकिन वे अपने पूर्वजों जैसे विशेष प्रतापी नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि हुणों ने गुप्त साम्राज्य पर हमला किया और गुप्त साम्राज्य समाप्त हुआ।[40]

गुप्त सम्राट शासन

गुप्त साम्राज्य के शासन कारोबार की दृष्टि से मुख्य दो भागों में विभाजित था - 1·केन्द्रीय शासन और 2·प्रांतीय शासन।

केन्द्रीय शासन

गुप्त-साम्राज्य का शासन सम्राट में केन्द्रित था। मौर्यों के समान गुप्तों ने भी अपनी वैयक्तिक शक्ति, साहस और प्रताप से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, जिसका शासन भी वे स्वयं ही "एकराट्" रूप में करते थे। ये गुप्त राजा अपने को "महाराजाधिराज", "परमेश्वर", "परम भागवत्", "परम दैवत", "सम्राट", "चक्रवर्ती" आदि विरुदों से विभूषित करते थे।

केन्द्रीय शासन के विविध विभागों को "अधिकरण" कहते थे। प्रत्येक अधिकरण की अपनी-अपनी मुद्रा (सील) होती थी। गुप्त-कला के शिलालेखों व मुद्राओं आदि से निम्नलिखित अधिकरणों और प्रधान राजकर्मचारियों के विषय में परिचय मिलता है - 1·महासेनापति 2·महादण्डनायक 3·रणभांडागारिक 4·महाबलाधिकृत, 5·दण्डपारीक 6·महासान्धिविग्रहिक 7·विनय-स्थिति-स्थापक 8·भांडागाराधिकृत, 9·महाक्षपरिसक, 10·सर्वाध्यक्ष

प्रान्तीय शासन

विशाल गुप्त-साम्राज्य अनेक राष्ट्रों व देशों में विभक्त था। साम्राज्य में कुल कितने देश व राष्ट्र थे, इसकी ठीक संख्या ज्ञात नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र में अनेक "भुक्तियाँ" और प्रत्येक "भुक्ति" में अनेक "विषय" होते थे। भुक्ति को हम वर्तमान समय की कमिश्नरी के समान समझ सकते हैं।

देश या राष्ट्र के शासक के रूप में प्रायः राजकुल के मनुष्य नियत होते थे। इन्हे "युवराज कुमारामात्य" कहते थे। इनके अपने-अपने महासेनापति, महादंडनायक आदि प्रधान कर्मचारी होते थे।

गुप्तकाल के जो लेख मिले हैं, उनसे स्वराष्ट्र, मालवा, मन्दसौर ओर कौशाम्बी इन चार राष्ट्रों का परिचय मिलता है। सुराष्ट्र का राष्ट्रिक (राष्ट्र का शासक) समुद्रगुप्त के समय में पर्णदत्त था, और मन्दसौर का शासन बन्धुवर्मा के हाथ में था।[41]

मन्त्रि-परिषद

गुप्त सम्राट शासकीय कार्यों का संचालन मन्त्रियों की एक परिषद की सहायता से करते थे। वह मन्त्रिमंडल की सहायता और परामर्श से शासन करता था पर अन्तिम निर्णय का उत्तरदायित्व उस पर ही था। मन्त्रि-परिषद का निर्णय एक अमात्य के द्वारा सम्राट के पास भेज दिया जाता था, और अन्तिम निर्णय सम्राट करता था। मन्त्रि-परिषद के निर्णय को मानने के लिए राजा बाध्य नहीं था। कुछ विशेष परिस्थितियों में मन्त्रि-परिषद संरक्षण परिषद
का कार्य भी करती थी और युवराज के राज्याभिषेक का भार इस पर रहता था। मन्त्रि-परिषद की कार्यवाही गोपनीय रखी जाती थी। मन्त्रियों को "सचिव" या "मन्त्रिन्" कहा जाता था। मन्त्रियों का पद प्रायः पैतृक होता जा रहा था। मन्त्रि कुलीन, सत्यवादी और अपने-अपने कार्य में कुशल होते थे।[42]

गुप्तकालीन भारत

गुप्तकालीन भारत और गुप्त सम्राटों का वंशवृक्ष इसप्रकार है -[43]

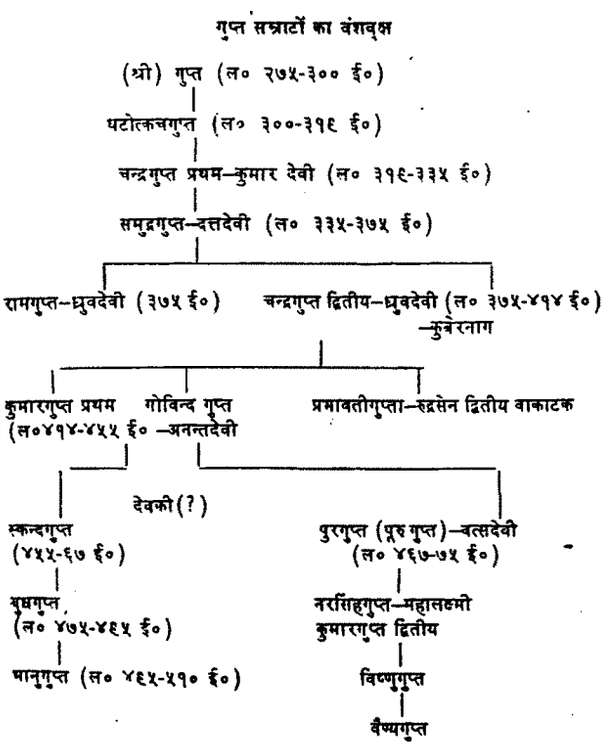

सामाजिक पृष्ठभूमि

गुप्त युग में सामाजिक दशा

साधारण जनता की सुख-समृद्धि

जनता में सामान्यतः किसी बात का अभाव न था और न उसमें अपराध करने की भावना ही थी। देश में विशाल नगरों की समृद्धि और धन-धान्यता, वहाँ के निवासियों की उदारता, धर्मपरायण एवं दानशीलता, राजमार्गों पर बनी सुख-सुविधा संपन्न धर्मशालाएँ अनेक स्थलों के दान और अन्न क्षेत्र, आदि इस बात के द्योतक हैं कि साधारण जनता सुखी सन्तुष्ट और समृद्ध थी।

विवाह प्रणाली

समाज में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान था। यद्यपि एक पत्नी प्रथा सर्वमान्य थी, परन्तु धन सम्पन्न परिवारों और राजवंशो में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त प्रथम की अनेक पत्नियाँ थी, किंतु धार्मिक यज्ञों व अनुष्ठानों में महारानी को ही भाग लेने का अधिकार था।

स्त्रियों की दशा

सुखी और समृद्धशाली परिवारों में कन्याओं को साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती थी। वे गायन, नृत्य, गृह-कार्य आदि में प्रवीण होती थी। स्त्रियों को इतनी ऊँची शिक्षा भी दी जाती थी कि वे संस्कृत ऋचाओं और श्लोकों को समझ सकती थी और इनकी रचना भी कर सकती थी। गुप्तकाल में शीला, भट्टारिका, आदि महिलाएँ कवयित्री और लेखकों के रूप में प्रख्यात हैं।

वेशभूषा और आभूषण

जनता साधारण सूती वस्त्रों का उपयोग करती थी। धनसम्पन्न और उच्च श्रेणी के लोग रेशमी और ऊनी वस्त्रों को धारण करते थे। उत्सवों और समारोहों में रेशमी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। पर मलमल, रेशम, छींट, और ऊन के वस्त्रों का उपयोग अधिक होता था। ऋतु के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे। लोग सिले हुए और बिना कटे हुए कपडे भी पहनते थे।

पुरुष की वेशभूषा में एक ऊपरी वस्त्र और एक नीचे का वस्त्र धोती होती थी। स्त्रियाँ साडी, अंगी और चोली धारण करती थीं।

मनोरंजन

उद्यानों में सैर और विविध प्रकार के खेल आमोद-प्रमोद के अन्य साधन थे। नृत्य और संगीत गोष्ठियों की प्रथा थी। सुशिक्षित और शिष्ट लोगों का मनोरंजन नृत्य, गायन, वादन तथा नाटकों द्वारा होता था। नगर में नाटकगृह और संगीत भवन होते थे। गणिकाएँ समाज में प्रिय थी। वे वादन, गायन और नृत्य से जनता का मनोरंजन करती थीं। मेलों और उत्सवों में भी सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे। लोग धार्मिक उत्सवों और रथ-यात्राओं में अधिक आनन्द लेते थे।[44]

धार्मिक पृष्ठभूमि

धार्मिक दशा

मौर्योत्तर युग में प्राचीन वैदिक धर्म के पुनरूद्धार की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी, गुप्त-काल में उसने और भी जोर पकड़ा। प्रायः सभी गुप्त सम्राट भागवत् वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। पर अहिंसावाद प्रधान वैष्णव धर्म को मानते हुए भी उन्होंने प्राचीन वैदिक परम्परा के अनुसार अश्वमेध यज्ञ किये।

वैष्णव और शैव-धर्म

गुप्त-सम्राट वैष्णव भागवत धर्म के अनुयायी थे। उनके संरक्षण के कारण इस धर्म की बहुत उन्नति हुई। इस युग में बहुत-से वैष्णव मंदिरों का निर्माण हुआ। अनेक शिलालेखों में भक्त-धर्मप्राण लोगों द्वारा बनवाये गये विष्णु-मंदिरो और विष्णुध्वजों का उल्लेख है।

गुप्त काल में बहुत-से शैव मंदिरों का भी निर्माण हुआ। गुप्त सम्राटों के शिलालेखों मे दो अमात्यों का उल्लेख आता है, जो शैव धर्म के अनुयायी थे। इनके नाम शाब और पृथ्वीषेण हैं। इन्होंने अपने नाम को अमर करने के लिए शिव के मंदिरों का निर्माण कराया। गुप्तों के पूर्ववर्ती भारशिव और वाकारक राजा शैव धर्म के अनुयायी थे। गुप्त-काल में भी वाकाटक, मैत्रक, कदम्ब और परिव्राजक वंशों के राजा मुख्यतया शैव धर्म का अनुसरण करते थे। हूण राजा मिहिर गुल ने

भी शैव धर्म को ग्रहण किया था। इसप्रकार यह स्पष्ट है कि वैष्णव धर्म के साथ-साथ शैव धर्म भी गुप्त-काल में प्रचलित था।

बौद्ध धर्म

सनातन वैदिक धर्म के पुनरूद्धार से बौद्ध और जैन धर्मो का जोर कुछ कम अवश्य हो गया था, पर अभी भारत में उनका काफी प्रचार था। कश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान के प्रदेशों में प्रायः सभी लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।

जैन धर्म

जैन धर्म के इतिहास में भी गुप्त-काल का बहुत महत्व है। इस समय तक जैनों में दो मुख्य सम्प्रदाय थे - दिगम्बर और श्वेताम्बर। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की दो प्रसिद्ध महासभाएँ गुप्त काल में ही हुई। पहली महासभा वल्लभी में 313 ईस्वी में हुई थी। इसके अध्यक्ष आचार्य नागार्जुन (जैन नागार्जुन बौद्ध नागार्जुन नहीं) थे। दूसरी महासभा भी वल्लभी में 453 ईस्वी में आचार्य क्षमाश्रमण के सभापतित्व में की गयी।

धार्मिक सहिष्णुता

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, गुप्त काल में पौराणिक आर्य-धर्म, बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म भारत में साथ-साथ फल-फूल रहे थे। तीन मुख्य धर्मो और उनके बहुत-से सम्प्रदायों व मतमतान्तरों के एक साथ रहते हुए भी इस काल में साम्प्रदायिक विद्वेष का अभाव था।[45]

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

कलाओं के क्षेत्र में गुप्त काल अपनी सर्वोत्कृष्टता की चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गया था। गुप्तकाल का गौरव और वैभव विविध दर्शनीय कलाकृतियों द्वारा ही स्थायी और चिरस्मरणीय हो गया। इस युग में समस्त भारत में कलाओं में अतुलनीय गतिविधि रही।

शिल्प-कला

कला-शिल्पियों की कार्य-निष्पत्ति का सौष्ठव और श्रेष्ठता शिल्पकला प्रदर्शित करती है। गुप्तकाल की सबसे अधिक महत्वशाली देन बौद्ध और हिन्दू धर्म की मूर्तियों का पूर्ण विकास है। शिल्पी की छैनी ने पाषाण को स्थायी सौन्दर्य और लालित्य की प्रतिमाओं में परिवर्तित कर दिया। गुप्त काल में बहुसंख्यक बोधिसत्वों की मूर्तियाँ जो पाषाण और काँसे की बनी हुई थी, भारत में अनेक स्थलों पर खोदकर निकाली गयी हैं। सारनाथ और मथुरा में भी ये प्रतिमाएँ विशेष रूप से उपलब्ध हुई हैं।

शिव, विष्णु और ब्राह्मण धर्म के अन्य देवताओं, जैसे सूर्य, कार्तिकेय आदि की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। शैव और वैष्णव मत गुप्तकाल में लोकप्रिय थे। अतः कलाकारों ने शिव और विष्णु के अनेक अवतारों की कथाएँ और पौराणिक गाथाएँ सरलता और निपुणता से उत्कीर्ण की। धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व की पौराणिक गाथाओं को समझकर कलाकार ने लालित्यपूर्ण ढंग से पाषाण पर अंकित करने का सफल प्रयास किया है।

वास्तु-कला

सृजनात्मक प्रोत्साहन की लहर जो अपने पीछे दृढ़ धार्मिक भावना लिये गुप्तकाल में वेग से बह रही थी, इस युग को वास्तुकला के क्षेत्र में भी सर्वोच्च दृष्टिगोचर होती है। झाँसी जिले में देवगढ का दशावतार मन्दिर, कानपुर के पास भीतर गांव का मन्दिर, जबलपुर जिले में तिग्वा का विष्णु मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, खोह का शिव मन्दिर जिसमें सुन्दर एकमुखी शिवलिंग है, आसाम के दरांगे जिले में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर जीर्ण-शीर्ण पर महान कलायुक्त मन्दिर और साँची तथा बोध गया की दो प्रसिद्ध समाधियाँ हैं। ये मन्दिर सुन्दर ढंग से निर्मित किये गये हैं।

चित्रकला

इस युग में चित्रकला अपने गौरव और शासन के उच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। गुप्त चित्र-कला के विश्वविख्यात नमूने अजन्ता की गुफाओं, मध्य भारत में बाघ गुफाओं, सित्तनवसल मन्दिर और लंका में सिगिरिय मे चट्टानों को काटकर बनाये प्रकोष्ठों में है। समस्त विश्व ने इन भित्तिचित्रों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अजन्ता के चित्रों से भली-भाँति यह ज्ञात होता है कि भारतीय कलाकारों ने मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं छोडा।

मुद्रण-कला

गुप्त काल में सिक्कों के ढालने की कला भी प्रगतिशील थी। भारतीय ढंग के आकर्षक सुन्दरतम सिक्के गुप्त काल के हैं। इस काल के सिक्कों का आकार और उन पर मूर्तियों, गरूड ध्वज, लक्ष्मी की मूर्ति, सिंह की आकृति एवं सुन्दर संस्कृत शब्दों में राजाओं की कीर्तिगाथा का वर्णन श्रेष्ठ व आकर्षक है। स्वर्ण और रजत दोनों प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन उस काल में था।

संगीत एवं अभिनय

गुप्त सम्राट संगीतप्रेमी थे। अतः इस कला का संरक्षण उन्होंने उदारता से किया। समुद्रगुप्त का वीणा बजाते हुए सुन्दर चित्र मुद्राओं पर अंकित है जिससे उसका संगीतप्रेम प्रकट होता है।

इस काल में लिखित विविध नाटकों में रंगमंच और उस पर किये गये श्रेष्ठ अभिनय और नृत्य का वर्णन है। ये इस बात के सबल प्रमाण हैं कि इस युग में नृत्य कला एवं अभिनय कला लोकप्रिय थी। रंगमंच का विकास हो चुका था।[46]

सांस्कृतिक कार्यक्रम

इस स्वर्णयुग में संगीत और नृत्य के साथ मित्र संगोष्ठी, राजगृह संगोष्ठी, राज्यसभा संजोष्ठी आदि संगोष्ठियों में विविध काव्य-पाठ होते थे और

श्रेष्ठ कवियों को पुरस्कार भी मिलते थे। इतना ही नही मदनोत्सव जैसे उत्सव भी बडे धूमधाम से मनाये जाते थे। गणिकाओं के नृत्य भी उस दिन प्रचलित थे।

साहित्यिक पृष्ठभूमि

गुप्तकाल में मुख्यतया संस्कृत, पाली और प्राकृत भाषाएँ व्यवहार में रूढ थीं, लेकिन सबसे अधिक प्रधानता संस्कृत भाषा को ही प्राप्त हुई थी।

गुप्त सम्राट स्वयं सुसंस्कृत थे, अतः उन्होंने साहित्य को उदारता से आश्रय दिया। वे विद्या और साहित्य के प्रचार में सदैव प्रयत्नशील रहे। समुद्रगुप्त तो स्वयं प्रतिभाशाली कवि और कुशल संगीतज्ञ था। उसकी राज्यसभा का सबसे अधिक प्रख्यात कवि हरिशेण था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता समुद्र गुप्त का अनुकरण किया और उसके उच्च मन्त्रियों में वीरसेन शाब नाम का एक कवि था। विविध किवंदन्तियों के अनुसार संस्कृत का सबसे प्रसिद्ध कवि कालिदास चंन्द्रगुप्त की राज्यसभा का मेधावी साहित्यिक था। §परन्तु विद्वान साहित्यकारों में कालिदासी की तिथि के बारे में मतभेद हैं। उसकी तिथी अभी विवादास्पद है§ उसने "शांकुतल", "मालाविकाग्निमित्र", "विक्रमोर्वशीय जैसे नाटक, "रघुवंश", जैसे महाकाव्य और "ऋतुसंहार" जैसे गीतिकाव्य की रचना की। कालिदास की प्रखर मेधा की ऊँचाई तक अन्य कवि न पहुँच सके। उनके कवित्वमय भावों से ओत-प्रोत शैली की सरलता एवं शब्दचयन के माधुर्य के कारण कालिदास संस्कृत साहित्य में अद्वितीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कवियों का भी बाहुल्य गुप्तकाल में था। वत्सभट्टि नामक कवि कुमारगुप्त प्रथम और द्वितीय का समकालीन था। पाटलिपुत्र का उक्त कवि वीरसेन शाब चन्द्रगुप्त द्वितीय का एक उच्च अधिकारी एवं राज्यसभा का सदस्य, महान व्याकरणाचार्य, राजनीतिज्ञ और कवि था। "वासवदत्ता" का प्रख्यात लेखक सबन्धु गुप्तकाल में ही हुआ था। बौद्धों का प्रसिद्ध लेखक आसंग जो "योगाचार भूमिशास्त्र", "महायान स्परीगृह" और इसके समान ही अन्य ग्रन्थों का रचियता था तथा उसका भ्राता आचार्य वसुबन्धु जिसने बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं एंव "प्रमाण समुच्चय" का लेखक दिगनाग

इस युग के सर्वोत्कृष्ट लब्धप्रतिष्ठ बौद्ध लेखकों में से थे। बौद्ध दर्शन के अधिकांश श्रेष्ठ आचार्य गुप्त युग में ही हुए। "मुद्राराक्षस" का रचयिता विशाखा दत्त और "अमर कोष" का लेखक अमरसिंह गुप्तकाल के ही थे। "मृच्छकटिक" नाटक का रचयिता शूद्रक, "काव्यादर्शक" और "दशकुमार चरित्र" का लेखक दण्डिन इस युग में प्रसिद्ध थे। रसिक, ललित, चपल, भर्तृहरि जो क्रमशः दरबारी, वैरागी, दार्शनिक, व्याकरणाचार्य और कवि था इस युग की विविध संस्कृति का नमूना था। हिन्दुओं में पाणिनी, कात्यायन और पतंजलि के व्याकरण ग्रन्थों का बडा आदर था किन्तु बौद्धों में चन्दगामी नामक बंगाली बौद्ध भिक्षु द्वारा विरचित "चन्द्र व्याकरण" इस युग में बडा लोकप्रिय हो गया। छन्दशास्त्र का विवेचन इस समय श्रुतबोध तथा वराहमिहिर की "बृहद संहिता" एवं "अग्निपुराण" में हुआ। वात्स्यायन का "कामशास्त्र" भी इसी युग की रचना है। सस्कृत गल्प-साहित्य की प्रसिद्ध पुस्तकें पंचतंत्र और "हितोपदेश" की रचना सम्भवतः इसी युग में हुई थी। विश्व की पचास से अधिक भाषाओं में इनके अनुवाद हुए हैं। इनकी कहानियाँ बगदाद, बिझनटाइन और काहिरा की राज्यसभाओं तक और अन्त में अन्य पाश्चात्य देशों में पहुँची, जहाँ इन्होने मध्यकालीन यूरोप के साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में ऐसा विश्वास किया जाता है कि सांख्य-पद्धति ने जो कई सदियों से प्रचलित थी, वर्षगुणय्य और ईश्वरकृष्ण की भाष्यों और टीकाओं में एक नवीन जीवन का अनुभव किया। ऐसा हमें बौद्ध-ग्रन्थों से विदित होता है। सांख्यदर्शन का सबसे सुन्दर और प्रामाणिक ग्रन्थ "सांख्यकारिका" ईश्वरकृष्ण की कृति है। न्याय-भाष्य के लेखक वात्स्यायन और इस भाष्य पर न्यायवार्तिक नामक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखने वाले उद्योतकर इसी काल की विभूति हैं। इसी युग में एक सचिव द्वारा "कामन्दकीय नीतिसार" की रचना हुई जो अर्थशास्त्र का एक अनुपम ग्रन्थ है। तमिल साहित्य का भी विकास हुआ और सम्भवतः रामायण और महाभारत का अनुवाद तमिल भाषा में इसी युग में हुआ।[47]

साहित्यिकों, दार्शनिकों और धर्माचार्यों द्वारा संस्कृत का उपयोग

गुप्त काल में विद्वानों, कवियों और लेखकों ने अपने उपाख्यानों, रचनाओं, ग्रन्थों, धर्म-शास्त्रों और दार्शनिक ग्रन्थों में प्राकृत भाषा की अपेक्षा संस्कृत का उपयोग किया। ब्राह्मणों ने ही नहीं अपितु बौद्धों और जैनियों ने भी, जो कि प्राकृत और पाली के बड़े समर्थक थे, संस्कृत के सौष्ठव, महत्व, प्रभाव और उपयोगिता को माना और उसे अपने प्रवचनों, पवित्र धर्मशास्त्रों और दार्शनिक साहित्य की भाषा बना दिया।

राष्ट्रभाषा संस्कृत

"समस्त देश में विद्वानों, कवियों, लेखकों, दार्शनिकों, धर्माचार्यों, शासकों, अधिकारियों और कर्मचारियों तथा अध्ययन-अध्यापन की भाषा संस्कृत होने से गुप्त काल में शीघ्र ही संस्कृत भारत की "राष्ट्रभाषा" के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी।[48] गुप्तकाल में संस्कृत भाषा साहित्य-शिखर पर पहुँच गयी थी।

हमारा विवेच्य साहित्यकार संस्कृत महाकवि और नाटककार कालिदास है और उसका परिवेश ऊपर संक्षेप में विवेचित किया गया है।

कालिदास की साहित्य संपदा

कालिदास लब्ध-प्रतिष्ठित और लोकप्रिय साहित्यकार थे। उनका नाम संस्कृत साहित्य में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। कालिदास की इस महिमा से प्रभावित होकर कुछ कवियों में अपनी कृतियों की प्रसिद्धि के लिये उनका नाम जोड़ दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कालिदास के नाम से अनेक साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं लेकिन वे सभी कृतियाँ हमारे विवेच्य कालिदास से संबंधित नहीं हैं। सभी विद्वानों ने कालिदास की जिन सात कृतियों को मान्यता दी है, वे इसप्रकार हैं -

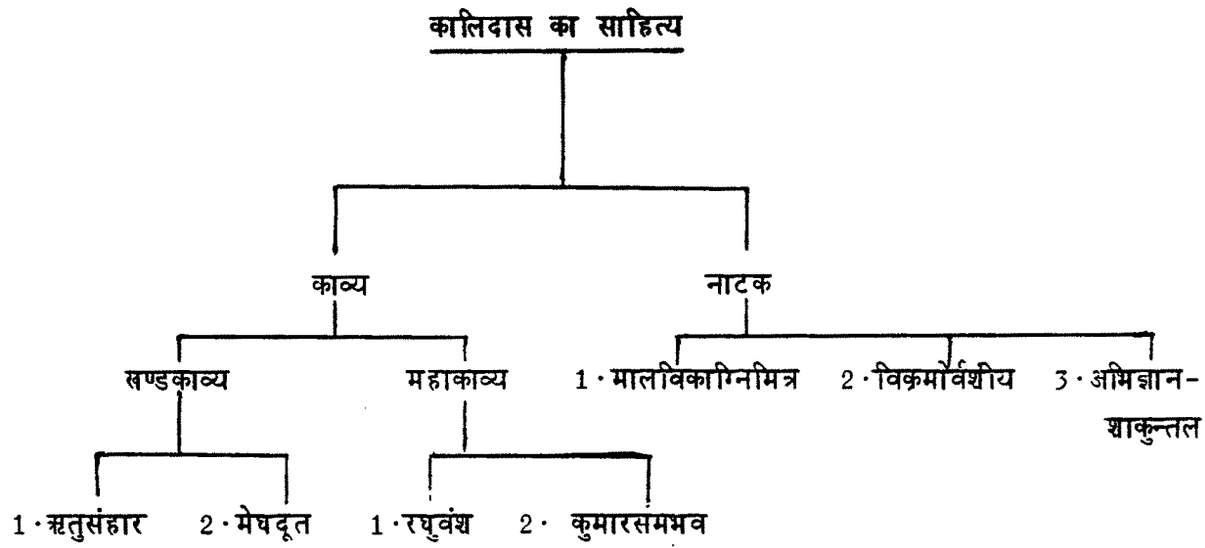

अ· काव्य-ग्रंथ

1· ऋतुसंहार

"ऋतुसंहार" कविवर कालिदास की प्रथम काव्य-रचना है। "ऋतुसंहार" नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें छः ऋतुओं का वर्णन कवि ने किया है। षड्ऋतु वर्णन की दृष्टि से इस काव्य का वर्णन अपना विशेष महत्व रखता है। कविवर कालिदास ने "ऋतुसंहार" काव्य में छः ऋतुओं का वर्णन किया है।

काव्य के प्रथम सर्ग में ग्रीष्म ऋतु का, द्वितीय सर्ग में वर्षा ऋतु का, तीसरे सर्ग में शरद ऋतु का, चतुर्थ सर्ग में हेमन्त ऋतु का, पंचम सर्ग में शिशिर ऋतु का और षष्ठ सर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है। कवि की यह पहली रचना है जिसमें उसने प्रकृति के चित्रण में अपनी कलम चलायी है।

इस काव्यग्रंथ की एक महत्वपूर्ण काव्य विशेषतः यह है कि कवि ने शरद और हेमन्त ऋतु वर्णन को छोडकर अन्य वर्णन में, चार ऋतुओं के प्रारंभिक वर्णन में, "प्रिया" शब्द के सम्बोधन से प्रत्येक सर्ग का आरम्भ किया है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य-रचना केवल प्रकृति का कोरा चित्रण नहीं है बल्कि प्रकृति की

पृष्ठभूमि पर प्रियतम् और प्रियतमा के प्रेम का चित्रण भी इस काव्य का उल्लेखनीय अंश है।

काव्य के प्रथम सर्ग के ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ बड़ी ही आकर्षक और सुहावना है जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का सुन्दर संगम नजर आता है। कवि ने प्रेम और सौन्दर्य में कामदेव के ठंडा पड जाने पर जीवन का विरोधाभास प्रकट किया है। कवि अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए कहता है - प्रिये! गरमी के दिन आ गए हैं। धूप बड़ी कड़ी हो गई है और चन्द्रमा बड़ा सुहावना लगता है। कोई चाहे तो आजकल दिन-रात गहरे जल में स्नान कर सकता है। इन दिनों साँझ बड़ी लुभावनी होती है और कामदेव तो एक-दम ठंडा पड गया है। यथा -

"प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः ।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।"[49]

इस प्रथम सर्ग में प्रेमीजनों की विविध विलास-क्रीडाएँ तथा भीषण ताप में तपे, झुलसे प्राणियों की दयनीय दशा का चित्रण हुआ है। कवि कहता है कि - "रात के समय उजले भवन में सुख से सोई युवती का मुख निहारने को उतावला रहने वाला चन्द्रमा जब बहुत देर तक उनका मुँह देख चुकता है तो लाज के मारे वह रात के पिछले प्रहर में उदास हो जाता है। तथा आजकल लोग कामदेव को उसी प्रकार जगाया करते हैं जैसे कोई स्त्री, अपने सोये हुए प्रेमी को चन्दन में बसे हुए ठंडे जल से भीगे हुए पंखों की ठंडी बयार झलकर या मोतियों के हारों की सटकती हुई झालरों से सजी वीणा के साथ अपने मीठे गले से गीत गा-गाकर जगाया करती है।

कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन में भी प्रकृति-वर्णन के साथ ही साथ प्रियकर और प्रेमी के प्रेम की ओर संकेत किया है। कवि कहता है - "जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारी के लिए ढंग-ढंग के फूलों के आभूषण बनावे वैसे ही वर्षा काल भी ऐसा लगता है मानों वह अपनी प्रेमिका के लिए जूही की नई-नई कलियों तथा

मालती और मौलसिरी के फूलों की माला गूँथ रहा हो और उनके कानों के लिए खिले हुए नये कदम्ब के फूलों के कर्णफूल बना रहा हो।"

"शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनव पुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः।[50]

शरद्-वर्णन मे भी निरीक्षण एवं ललित कल्पना से समन्वित चित्र उपलब्ध हैं। कालिदास की शरत् काथ की नई साडी पहन कर, खिले कमलों के मुख की सुन्दरता लिए मस्त हँसी के वूजन रूपी नपुरों से मनोहर बनी, फल के भार से झुकी हुई पकी शालि की तरह लज्जा से झुके कोमल शरीर वाली नववधू बनकर आती दिखाई देती है। ऋतुसंहार की कला के भोलेपन तथा "बचकानेपन" में भी अपना सौन्दर्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

शरद् की अर्थवत्ता तब तक पूर्ण एवं सहृदय श्लाघ्य नही बनती, जब तक प्रणय राज्य में भी वह मधुर उद्वेजनाओं को जन्म नहीं देती। कालिदास ने कैसे कान्ता-सम्मित ढंग से शरद की प्रणय-व्यंजना का कथन किया है उसे निम्नलिखित पदों में देखिए -

"असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु,
क्वणित कनककाञ्ची मत्तहंसस्वनेषु।
अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां
पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः।।
स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशाङ्क-लक्ष्मीं
काम्यं च हंसवचनं मणिनुपुरेषु।
बन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु
क्वापि प्रयाति सुभगा शरदागमश्रीः ।।"[51]

जब परदेश में गये हुए लोग नीले कमलो में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की सुन्दरता देखते हैं, मस्त हँसो के मधुर कलहों में उनकी कनककांची की रुनझुन सुनते

हैं तथा बन्धुजीव के फूलों में उनके अधरों की अरूण शोभा देखते हैं, तब वे सूध-बूध भूलकर बिलखने लगते हैं।

शरद की शोभा कहीं तो चन्द्रमा की चमक की छोडकर स्त्रियों के मुख में चली गई, कही हंसो की मीठी बोली छोडकर उनके मणि-नुपूरों में प्रवेश कर गई है और कही बन्धूक-पुष्पों की रक्तिमा को छोडकर नारियों के मनोहर अधरों में जा बसी है। कवि ने हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के वर्णन में नर-नारियों के रति-विलास के चमत्कारी चित्र खींचे हैं। हेमन्त ऋतु-वर्णन में कवि के धन-धान्यों का और फल-फूलों का मार्मिक वर्णन किया है।

शिशिर ऋतु के वर्णन में मुख्यतया भोग विलास का विस्तृत वर्णन किया है। शिशिर ऋतु के वर्णन में कवि ने लक्ष्मी का निवास और स्त्रियों की कमनीयता का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है। कवि कहता है "इन दिनों प्रातःकाल के समय स्त्रियों के सुन्दर ओठों वाले, लाल कोरों से सजी हुई बडी बडी आँखो वाली, कंधो पर फैले हुए बालों वाले और सुनहले कमल के समान चमकने वाले गोल मुखों को देखकर ऐसा लगता है मानों घर-घर में लक्ष्मी आ बसी हो।

"कनककमलकान्तैश्चारुताम्राधरोष्ठैः श्रवणतटनिषकैः पाटलोपान्तनेत्रैः।
उषसि वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य।"

वसन्त ऋतु के वर्णन में कवि के काव्य-प्रतिभा का अच्छा वर्णन मिलता है। वसन्त ऋतु के आगमन का कवि ने अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है। कवि प्रिया को सम्बोधित करते हुए कहता है -"देखो प्यारी। वसन्त के आते ही सब वृक्ष फुलों से लद गए हैं, जल में कमल खिल गए हैं, स्त्रियाँ मतवाली हो गई हैं, वायु में सुगन्ध आने लगी है, साँझे सुहावनी हो चली है, और दिन सुभावने हो गए हैं। सचमुच सुन्दर वसन्त में सब कुछ सुहावना लगने ही लगता है।

"द्रुमाः सुपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धि।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्व प्रिये चारुतरं बसन्ते।"[52]

"ऋतुसंहार" के अन्तिम सर्ग का अन्तिम अंश बड़ा ही मार्मिक तथा आकर्षक है। कवि की लोकमंगल-कामना यहाँ सहज ही दिखाई पडती है। जैसे - "जिसके आम के बौरे ही बाण हैं, टेस् ही धनुष हैं, भौरों की पाँत डोरी है, मलयाचल से आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने संसार को जीत लिया है वह कामदेव वसन्त के साथ आपका कल्याण करे।"

"मत्तेभो मलयानिलः परभृता यदन्दिनो लोकजि
त्सोऽयं वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ..।[53]

संक्षेप में कवि की इस प्रथम काव्य-रचना में कवि का प्रकृति-प्रेम तथा प्रेमी लोगों की विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का एवं उनके पशु-पक्षी, फूल-पौधे आदि का एक साथ मनोहारी वर्णन करने में कवि सफल हुआ है। डॉ॰भगवतीशरण उपाध्याय के अनुसार "उसमें (ऋतुसंहार) छहों ऋतुओं का, उनकी गर्मी-सर्दी का, उनमें फूलों वाले पौधों-पेडों का, विचारने वाले जीव-जन्तुओं का, मौसम के साथ निरन्तर बदलते जाने वाले मनुष्य और दूसरे प्राणियों की मानसिक प्रवृत्तियों का बडा भावुक और मधुर वर्णन है। मनुष्य ओर वन के प्राणी, फूल-पौधे ओर पशु-पक्षी, कोयल, भौंरे बीरबहूटियाँ तक, सभी एक साथ जैसे सांस लेते हैं।[54]

2· **मेघदूत**

"मेघदूत" कालिदास का अत्यन्त लोकप्रिय और विख्यात खण्डकाव्य है। भारतीय दूतकाव्य परम्परा में "मेघदूत" का इसलिए महत्वपूर्ण स्थान है कि कवि ने किसी नर या नारी को दूत न बनाकर मेघ को ही दूत बनाया है जो कवि की कल्पना-विलास की अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत खण्डकाव्य दो भागों में विभाजित हैं - 1·पूर्वमेघ 2·उत्तरमेघ

कवि ने यक्ष की विरह-व्यथा का सुन्दर वर्णन इस काव्य में किया है। अलकापुरी में कुबेर के यहाँ एक यक्ष अनुचर के रूप में कार्य करता था परन्तु उसका ध्यान रात-दिन अपनी प्रेयसी में ही लगा रहता था। प्रियतमा के आसक्ति के कारण

उसने अपने कार्य में गलती की। परिणामतः कुबेर क्रोधित हो गये और उस यक्ष को अलकानगरी से निर्वासित किया गया। कुबेर ने उस यक्ष को यह शाप दिया कि एक वर्षपर्यंत तू अपनी प्रिया से नहीं मिल सकेगा। इस कठोर शाप से संतप्त होकर यक्ष का रागरंग भंग हो गया। और शाप की अवधि व्यतीत करने के लिए वह रामगिरी पर पहुँचा। जहाँ स्निग्ध छाया वाले सघन वृक्ष लहलहा रहे थे कवि ने पूर्वमेघ में रामगिरी से लेकर अलका तक की मार्ग का प्राकृतिक - सुषमा का सहज और सुंदर वर्णन किया है।

रामगिरी के प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर यक्ष को ऐसे लगता है कि वह अपना सन्देश मेघ के द्वारा ही अपनी प्रेयसी को पहुँचा दे। इसलिए यक्ष मेघ से अनुरोध करता है कि - "हे मेघ इस संसार में तुम्हारा कुल विशेष प्रसिद्ध है, तुम इंद्र के दूत हो और तुम जैसा चाहो वैसा रूप भी बना सकते हो इसलिए अपनी प्यारी से इतनी दूर लाकर पटका हुआ मैं अभागा तुम्हारे ही आगे हाथ पसार रहा हूँ। कुबेर की क्रोध से निकले हुए और अपनी प्यारी से दूर पटके हुए मुझ बिछोही का संदेशा तुम्ही मेरी प्यारी के पास पहुँचा आओ। तत्पश्चात कवि ने पूर्वमेघ के अंतर्गत यक्ष को रामगिरी से अलकानगरी तक जाने के मार्ग का विस्तृत वर्णन किया है। इस वर्णन में कवि ने उज्जयिनी, हिमालय आदि की सुषमा का भी बेजोड़ वर्णन किया है। कवि कहता है मेघ के थक जाने से उसे हिमालय की चोटी पर विश्राम लेना पडेगा। यह हिमालय एक ऐसा पर्वत है जहाँ की चोटी से गंगा नदी निकलती है। जिसकी शिलाएँ कस्तुरी हरिणों के सदा बैठने से महकती रहती है, तब उस चोटी पर बैठे हुए तुम वैसे ही दिखलाई दोगे जैसे महादेवजी के उजले साँड़ के सींगो पर मिट्टी के टीलों पर टक्कर मारने से कीचड़ जम गया हो।

"आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रथवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्।[55]

यक्ष आगे मेघ से कहता है कि उसी कैलास पर्वत की गोद में अलकापुरी वैसे ही बसी हुई है जैसे अपने प्यारे की गोद में कोई कामिनी बैठी हो। यथा-

" तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकुलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।[56]

यहाँ मेघदूत का पूर्वमेघ विभाग समाप्त होता है।

"उत्तर मेघ"में कवि ने मुख्यतया अलकानगरी के वैभव का, वहाँ के प्रस्फुटित प्राकृतिक सौन्दर्य का तथा वहाँ के कामिनियों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

अलकानगरी में सदा फूलने वाले ऐसे बहुत से पेड़ हैं, जिन पर मतवाले भौंरे गुनगुनाते रहते हैं। वहाँ बारहमासी कमल और कमलनियों को हंसो की पाँते घेरे रहती हैं। वहाँ सदा चमकीले पंखोंवाले पालतू मोर उँचा सिर किए हुए रात-दिन बोलते रहते हैं और यहाँ की रातें सदा चाँदनी रहने से बड़ी उजली और मनभावनी होती हैं।

"यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपदमा नलिन्यः।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषा।[57]

तत्पश्चात कवि ने यक्ष की पत्नी विरहिणी यक्षिणी का बडा ही मनोवैज्ञानिक तथा मनोहारी वर्णन किया है। यक्ष के घर में स्थित अपनी पत्नी की विरहदशा का और उसके सौन्दर्य का वर्णन देखिए - यक्ष मेघ से कहता है - वहाँ जो दुबली-पतली, नन्हें दाँतोंवाली, पके हुए बिंबाफल के समान, लाल ओठोंवाली पतली कमरवाली, डरी हुई हरिणी समान, आँखों वाली और यौवनभार से झुकी हुई युवती तुम्हें दिखाई दे वही मेरी पत्नी होगी। उसकी सुन्दरता देखकर यही जान पडेगा मानो ब्रह्मा की सबसे बढ़िया कारीगरी वही हो।

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्कबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।[58]

उत्तर मेघ के अन्त में यक्ष अपना सन्देश अपनी पत्नी को दूत-मेघ के माध्यम से इसप्रकार पहुँचाने के लिए कहता है। यक्ष कहता है - "हे काली आँखोवाली। इस पहचान से ही तुम समझ लेना कि मैं कुशल हूँ। लोगों के कहने से तुम मेरे प्रेम में संदेह न कर बैठना। न जाने लोग यह क्यों कहा करते हैं कि विरह में प्रेम कम हो जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जब चाही हुई वस्तुएँ नहीं मिलती तभी उन्हें पाने के लिए प्यास बढ जाती है और ढेरों प्रेम आकर इकट्ठा हो जाता है।

देखो मेघ। पहली बार के विछोह से दुखी अपनी भाभी को इस प्रकार ढाढस बँधाकर, उसे कुशल समाचार पाकर और पहचान लेकर तुम मेरे पास जल्दी ही उस कैलास पर्वत से लौट आना जिसकी चोटियों महादेवजी के साँड़ ने उखाड़ दी है और फिर यहाँ आकर प्रातःकाल खिले हुए कन्द के फुल के समान चू पड़ने वाले मेरे प्राणों की रक्षा करना।"

"एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञान दानादिदित्वा
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्याविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।
आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहित कुशलैस्तदचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिल जीवित धारयेथाः।

यक्ष का यह संदेश सुनकर मनचाहा रूप धारण करने वाला बादल रामगिरी से चलकर अलका पहुँच जाता है। तत्पश्चात वह यक्ष का भक्त पहचानता है और यक्ष का संदेश उसकी पत्नी को पहुँचाता है। अपने पति का संदेश सुनकर उसकी पत्नी फूले न समाती है। कुबेर भी जब इस बात को सुनता है तब उसके मन में यक्ष के प्रति दया उपजती है और यह दोनों पति-पत्नी के लिए ऐसे सुख लूटने का प्रबंध करता है कि फिर उन्हें कभी दुःख न मिले।

इसप्रकार यद्यपि "मेघदूत" काव्य में विरही जनों का दुःख कवि ने व्यक्त किया है फिर भी इस काव्य का अन्त पति-पत्नी के मिलन से और सुखी होने से आनंददायी ही है। "मेघदूत" मे यक्ष की विरह व्यथा पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बडे ही मौलिक विचार व्यक्त किये हैं - "एक तार को छुओ और सहस्त्रों तार झनझना उठते हैं। नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही व्याकुल अभिलाष-भाव उल्लासित हो रहा है। मिलन स्थिति-बिन्दु है, विरह गति-वेग है। दोनों के परस्पर आकर्षण से रूप की प्रतीति होती रहती है, विचार मूर्त आकार ग्रहण करते हैं। भावना सौन्दर्य बनती है। विरह में सौभाग्य पनपता है, रूप निखरता है, मन निर्मल होता है, बुद्धि एकता का सन्धान पाती है।"[59]

3· रघुवंश

"रघुवंश" कालिदास का लिखा हुआ संस्कृत का उत्कृष्ट महाकाव्य है। सूर्यवंश का काव्यमय इतिहास लिखने में कवि ने अपनी कला का यथार्थ परिचय दिया है। प्रस्तुत महाकाव्य 19 सर्गो में विभाजित है। शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य के सभी लक्षण इस महाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में सर्वप्रथम शिव-पार्वती की वंदना की गयी है। और तत्पश्चात निपुत्रिक राजा दिलीप और राणी सुदक्षिणा का वर्णन है। धेनूसेवा न करने से उन्हें पुत्रप्राप्ति नहीं होती है और वे पति-पत्नी वसिष्ठ के आश्रय में प्रवेश करते हैं और वहाँ ठहरते हैं।

महाकाव्य के दूसरे सर्ग में राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के द्वारा पुत्र-प्राप्ति के लिए धेनू सेवा की जाने का वर्णन है।

तीसरे सर्ग में रघु का जन्म और राज्याभिषेक का वर्णन है। रघु को सिंहासन पर बिठाकर राजचिह्न सौंपकर राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा इक्ष्वाकु वंश के अनुसार तपस्या करने के लिए वनप्रवेश करते हैं।

चौथे सर्ग में रघु के भारत-दिग्विजय का वर्णन किया है। दिग्विजय के पश्चात् रघु "विश्वजीत" नामक यज्ञ करता है और अपनी सारी संपत्ति दक्षिणा में बाँट देता है।

पाँचवे सर्ग में ब्राह्मण कौत्स ने रघु की उदारता और त्याग को देखकर उसे आशीष दी कि एक प्रतापी पुत्र उसे प्राप्त होगा। रघु की रानी की कोख से ब्रह्म मुहुर्त में कार्तिकेय के समान तेजस्वी पुत्र जन्मा। पिता ने उसका नाम अज रख दिया। तत्पश्चात इस सर्ग में अज का स्वयंवर के लिए गयन वर्णित किया है।

"रघुवंश" महाकाव्य का आठवाँ सर्ग विशेष उल्लेखनीय है। अज के विवाहित होते ही रघु ने अज के हाथों में सारी सत्ता सौंप दी। अपने पिता की आज्ञा के अनुसार अज ने कुछ समय तक राज्य का कारोबार सँभाला। यह कारोबार उसने भोगलालसा कि दृष्टि से नहीं बल्कि पिता के आज्ञा के स्वरूप और प्रजा के पालन के लिये ही स्वीकार लिया। अज की पत्नी इन्दुमती वीरपुत्र को जन्म दिया। यह पुत्र विख्यात राजा दशरथ ही थे। लेकिन विशेष बात यह है कि एक दिन अपने पति के साथ इन्दुमती विचरण कर रही थी। कहा जाता है कि उस समय स्वर्ग से एक माला जो अत्यंत सुगन्धित थी वह अचानक रानी इन्दुमती के वक्षस्थल के बीच आकर गिरी और क्षणार्ध में ही इन्दुमती ने व्याकुल होकर अपनी आँखे मूँद ली। और पत्नी की मृत्यु से दुःखी होकर अज भी गिर पडे। इस सर्ग में अपनी पत्नी इन्दुमती के वियोग में अज ने जो विलाप किया, बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है।

कालिदास का अज-विलाप भारतीय साहित्य में बेजोड़ है। अज का विलाप दृष्टव्य है "अज अपनी पत्नी को पुकारते हुए कहता है कि मैने कभी मन से भी तुम्हारी बुराई नहीं की, फिर तुम मुझे क्यों छोडे जा रही हो। सच कहूँ, मैं पृथ्वी का पतित नामभर को हूँ। मेरा सच्चा प्रेम तो केवल तुमसे ही है। हे प्रिये! फूलों से गूँथी और भौरों के समान काली तुम्हारी लटें जब वायुसे हिलती हैं तब मेरे मन में यही आशा होने लगती है कि तुम अवश्य जी उठोगी। इसलिए हे प्रिये! जैसे रात में चमकनेवाली बूटियाँ अपने प्रकाश से हिमालय की अँधेरी गुफा में भी चाँदनी कर देती है वैसे ही तुम भी फिर जागकर मेरा दुःख मिटाओ। यौन भौरों से भरे हुए और रात में मूँदे अकेले कमल के जैसा लगने वाला तुम्हारा बिखरी अलकों से ढका मौन मुख देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

देखो चन्द्रमा को रात्रि फिर मिल जाती है, चकवे को चकवी भी प्रातः मिल जाती है, इसलिए उन्हें बिछोह का दुःख थोड़ी ही देर तक रहता है पर तुम तो सदा के लिए चली जा रही हो, फिर बताओ मैं विरह की आग में चलकर क्यों न भस्म हो जाऊँ।

"कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवाल कान्।
करभोरू करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशङ्कि कं मनः।।

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता दन्दचरं पतत्त्रिणम्।
शति तो विरहान्तरक्षमो कथमत्यन्तगता न मां दहेः।।"

हिन्दी के विख्यात कवि नागार्जुन की "कालिदास से" शिर्षक कविता कुछ पंक्तियाँ यहाँ सहज ही याद आती हैं -

"कालिदास! सच सच बतलाना!
इन्दुमती के मृत्यु-शोक से
अज रोया या तुम रोये थे ?
कालिदास! सच-सच बतालाना!

नवम सर्ग में राजा दशरथ की अखिर का वर्णना है। अखिर के समय राजा दशरथ की असावधानी से बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु होती है। और उसके माता-पिता व्याकुल हो जाते हैं और दशरथ को शाप देते हैं कि, तुम भी हमारे समान पुत्र-शोक से प्राण छोडोंगे। राजा ने उन दोनों बूढे माता-पिता के अन्तिम संस्कार किये।

तत्पश्चात इस महाकाव्य में दसवें सर्ग में राम जन्म का वर्णन है। ग्यारहवे सर्ग में राम और सीता के विवाह का वर्णन है। बारहवे सर्ग में रावण-वध का है। तेरहवे सर्ग में राम का दण्डक वन से वापस लौटना, चौदहवे सर्ग में राम द्वारा सीता का त्याग, पंद्रहवे सर्ग में राम का स्वर्गारोहण, तथा सोलह सर्ग से उन्नीसवें सर्ग तक रघुवंश के अन्तिम कथा का संक्षिप्त वर्णन है। अन्तिम राजा अग्निवर्ण है जिसकी क्षय रोग से मृत्यु होती है। यहाँ महाकाव्य समाप्त होता है। महाकाव्य के अन्तिम सर्ग का नाम श्रृंगार का श्रृंगार है। वस्तुतः रघुवंश महाकाव्य का अजविलाप इतना परिणामकारी है कि वह पाठकों को भावविभोर कर छोड देता है।

डॉ॰रमाशंकर त्रिपाठी के शब्दों में - "अज-विलाप करूण, विप्रलम्भ का अविस्मरणीय प्रतीक है। इसकी स्पर्धा "कुमारसम्भव" का रति-विलाप ही कर सकता है। एक अर्थ में ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक में रमणाधार प्रिय के प्राणान्त पर नारी - हृदय में प्राणवल्लभा प्रिया के आकस्मिक निधन पर पुरूष हृदय की दारूण वेदना का मर्मद्रावक उन्मीलन सम्पन्न हुआ है। समस्त साहित्य में ये दोनों विलाप निराले एवं अनुपम हैं।[61]

4· कुमारसम्भव

"कुमारसम्भव" महाकाव्य के सम्बन्ध में विविध मतवाद प्रचलित हैं। कुछ लोग इसमें सत्रह सर्ग मानते हैं। कुछ का कहना है कि इसमें 22 सर्ग हैं और कुछ लोग कहते हैं कि, कालिदास ने आठ सर्ग तक ही लिखा है, शेष नौ सर्ग किसी मल्लिकानाथ की संजीवनी टीका थी, आठ सर्ग तक होने के कारण अंतिम

मत को अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

ब्रह्मा से वरदान पाकर तारकासुर ने देवताओं को सताना शुरू कर दिया। त्रस्त देवतागण ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने शिव से पार्वती का विवाह करा देने की सलाह दी। देवताओं ने प्रयत्न करके शिव और पार्वती का विवाह करा दिया। भगवती पार्वती से एक पुत्र पैदा हुआ उसका नाम स्वामी कार्तिकेय तारकासुर के वध के लिए देवताओं ने स्वामी कार्तिकेय को अपना सेनानी बनाया। सेनापति स्वामी कार्तिकेय ने तारकासुर सहित असुरों का संहार किया।

इसकी कथा सर्गानुसार है -

प्रथम सर्ग में उत्तर दिशा में पृथ्वी का मानदण्ड देवतात्मा हिमालय है। जिसके एक शिखर कैलास पर शिव का निवास है। हिमालय के भीतरी भाग में यक्ष किन्नर ओर गन्धर्व रहते हैं। गिरिराज की सुन्दर रजतमयी गुफाओं में अनेक यक्षिणियाँ विद्याधरियाँ ओर देवयोनियाँ रहती हैं। विविध क्रीडा कौतुक और विलास करती है। उधर शिव अपने कैलास में घोर समाधि लगाये बैठे हैं। अनेक देवबलाओं के साथ हिमगिरी की कन्या गौरी भी शिव की अर्चना के लिए फूल चुनती है, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाती हैं।

दूसरे सर्ग में इसी समय तारकासुर से सताये गये देवगण ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा ने कहा - उसे तो मैं वरदान दे चुका हूँ, इसलिए उसके विरुद्ध मैं स्वयं कुछ न कर सकूंगा। आप लोग कोशिश करके शिव का पार्वती से ब्याह करा दीजिए। उनसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकासुर का वध करेगा। तीसरे सर्ग में इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर समाधिस्थ शिव के हृदय में पार्वती के प्रति आकर्षण उत्पन्न कराने का भार सौप दिया। अपनी पत्नी रति को साथ लेकर कामदेव हिमालय में गया। वसन्त के सहकार से उसने सर्वप्रथम शिव के हृदय में 'काम' उत्पन्न करने की चेष्टा की। भगवान शिव उस समय योगस्थ होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव कर रहे थे। धीरे-धीरे उनकी समाधि टूटने लगी। समाधिभंग हो जाने के बाद उनके गण नन्दी ने शिवजी का आदेश पाकर पार्वती को गुफा के अन्दर जाने

दिया।

पार्वती ने शिव के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित कर जब कमलगट्टा की माला पहनाने के लिए हाथ बढाया तो उसी के साथ कामदेव ने धनुष्य पर सम्मोहन बाण चढाया। शिवजी की चित्त वृत्ति क्षणभर के लिए डाँवाडोल हो गई किन्तु तुरन्त सँभालकर उन्होंने अपनी वृत्तियों को संयमित किया और वह इस प्रकार के चित्तवृत्ति-विक्षोभ का कारण ढूँढने लगे। सामने देखा तो धनुष्य पर बाण चढाये हुए कामदेव दिखायी पडा। शिव ने क्रोध से जलते हुए अपना तीसरा नेत्र खोल दिया उससे भयंकर ज्वाला निकली, जिससे कामदेव तत्काल भस्म हो गया।

चौथे सर्ग में अपने पति कामदेव को भस्म हुआ देखकर उसकी पत्नी देहत्याग करने को तैयार हो गयी इसका वर्णन है। वह अपने पति की यह दशा देखकर विलख-विलख कर रोने लगी। जब काम-सहचर वसन्त उसे सांत्वना देने लगी तो रति का शोक असीम हो गया। वह देहत्याग करने के लिए तैयार हो गई तब आकाशवाणी हुई कि शिवजी पार्वती का पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, उस समय वह काम को प्राणदान देंगे। इसलिए तुम धीरज रखो।

पाँचवा सर्ग - मदन-दहन का काण्ड देखकर पार्वती को बड़ी निराशा हुई। वह शिवजी को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपश्चर्या में लग गई। उनकी एकनिष्ठ साधना से प्रसन्न होकर शिवजी ब्रह्मचारी का रूप धारण कर पार्वती के पास आये। अतिथि ब्रह्मचारी की अर्चना तपस्या से क्षीणकाय पार्वती ने की। ब्रह्मचारी ने उनकी कष्टसाध्य तपस्या का कारण पूछा तो पार्वती ने तो कुछ भी उत्तर नहीं दिया लेकिन उनकी सख्यी ने बताया कि शिवजी को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए इनकी यह कठिन साधना है।

यह सुनकर ब्रह्मचारी ने शिव की खूब निन्दा की। उनके विकट रूप, श्मशानवाल दरिद्रता, कुरूपता का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी ने पार्वती को अपना संकल्प छोड देने की सलाह दी। ब्रह्मचारी की बाते सुनकर पार्वती कृद्ध होकर उसे फटकारने लगी और अपने दृढ संकल्प पर अटल रहने का निश्चय दुहराया।

12944

A

ब्रह्मचारी फिर कुछ समझाना चाहते थे कि पार्वती वहाँ से उठकर जान लगी तो शंकर ने अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा - "देवि, मैं तुम्हारी साधना से प्रसन्न होकर तुम्हारेअधीन हो गया हूँ।

छठा सर्ग - इसके अनन्तर शिवजी ने अरून्धती सहित सप्तर्षियों को गिरिराज के पास पार्वती की मँगनी के लिए भेजा। हिमालय ने अपनी पत्नी से सलाह कर सप्तर्षियों का प्रस्ताव स्वीकार कर पार्वती की सगाई शिव से कर दी।

सातवाँ सर्ग - शुभ मुहुर्त में शिव का पार्वती से विवाह हो गया। शिव अपने गणों और देवताओं की बारात लेकर हिमालय के यहाँ पहुँचे। विवाहोत्सव बड़े धामधूम से मनाया गया।

आठवाँ सर्ग - पार्वती को विदा कराकर शिव कैलास में आये। वे चिरकाल तक दाम्पत्य सुख का उपभोग करते रहे।[62]

"चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं खिन्नहस्तसदयोपगूहनम्।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम्।।"[62]

अर्थात् -

धीरे - धीरे पार्वतीजी की झिझक मिटने लगी और इसलिए जब कभी महादेवजी इन्हें काटते नही थे, घाव नहीं करते थे और धीरे धीरे प्रणय क्रीडाएँ करते थे तो ये आनाकानी नहीं करती थी।

नवाँ सर्ग - शिव और पार्वती जहाँ क्रीडारत थे, उसी स्थान पर इन्द्र ने अग्नि को कबुतर बनाकर भेजा किन्तु अग्नि ने जब लोक-मंगल का प्रयोजन बताया तो प्रसन्न होकर उन्होंने अपना वीर्य उसमें स्थापित किया। अग्नि जब वीर्य की ज्वाला सहन न कर सका तो इन्द्र के कहने पर उसने उसे स्वर्ग की गंगा में छोड दिया।

दसवाँ सर्ग - गंगा भी जब उस वीर्य को धारण करने में जब असमर्थ रही तो उसने उसे स्नान के लिए आयी हुई छह कृतिकाओं के शरीर में डाल दिया। सद्कृत्तिकाओं ने भी असमर्थ होकर उस वीर्य को वेतस्ट वन में छोड दिया।

ग्याहरवाँ सर्ग - उसी समय आकाशमार्ग से जाते हुए शिव और पार्वती की दृष्टि वेतस् वन में पडे हुए बालक पर पडी। वे उसे अपने ही वीर्य से उत्पन्न समझकर उठा लाए। केवल छह दिनों के अन्दर वह बालक बडा होकर शस्त्र-शास्त्र सभी विधाओं में पारंगत हो गया। उसका नाम कुमार रखा गया।

बारहवाँ सर्ग - तब इन्द्रादि प्रमुख देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने कुमार को देवसेना का सेनापति बनाकर स्वर्ग भेज दिया।

तेरहवाँ सर्ग - देवसेनानी कुमार स्कन्द ने तारकासुर पर आक्रमण किया।

चौदह सर्ग से सत्रह सर्ग तक - घनघोर देवासुर संग्राम छिड़ गया। अन्त में कुमार ने तारकासुर का वध किया। स्वर्ग की देवियों ने हर्षोत्फुल्ल होकर कुमार पर पुष्प वृष्टि की। इन्द्र निष्कण्टक होकर स्वर्ग का राज्य करने लगा।

आधार : प्रयोजन - कुमार कार्तिकेय की कथा ब्रह्मवैवर्त शिव और स्कन्द पुराण में मिलती है।

कालिदास का 'कुमारसम्भव' लिखने का एकमात्र प्रयोजन विवाह, प्रेम की पवित्रता और आध्यात्मिकता सिद्ध करना प्रतीत होता है। बाह्य-सौन्दर्य और आकर्षण से कही अधिक आन्तरिक सौन्दर्य और आकर्षण होता है। दाम्पत्य-जीवन संयमी और लोकमंगलकारी होना चाहिए - यही 'कुमारसम्भव' का अभिप्राय है।

कालिदास विरचित "कुमारसम्भव" महाकाव्य के बारे में कहा जाता है कि "कुमारसम्भव" के प्रथम आठ सर्ग ही प्रामाणिक हैं। अन्य सर्ग प्रक्षिप्त या बाद में जोड दिए गये हैं। प्रथम आठ सर्ग की प्रामाणिकता के बारे में यह उल्लेख किया जाता है कि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित, टीकाकार मल्लिनाथ ने कालिदास के आठ सर्गो पर ही टीका-टिप्पणी की है। अन्य सर्ग पर उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा है। हमारे विवेच्य नाटककार "सुरेन्द्र वर्मा ने अपने प्रसिध्द नाटक "आठवा सर्ग" की प्रस्तावनामें भी कालिदास विरचित "कुमारसम्भव" के आठ सर्ग की प्रामाणिकता के बारे में टीकाकार मल्लिनाथ आदि का उललेख किया है।[63]

आ· नाटक

1·· मालविकाग्निमित्र

मालविकाग्निमित्र कवि कालिदास का प्रथम नाटक है। इस नाटक को अपनी प्रथम कृति होने के कारण ही कालिदास ने लिखा है -

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्तेः मूढ़ः परिप्रत्ययनेयबुद्धिः॥"[64]

नाटक के पाँच अंक हैं - नाटक का कथानक मिश्रविष्कम्भक से प्रारम्भ होता है। मालविका के नृत्यापदेश के सम्बन्ध में जानने के लिए संगीतशाला को जाती हुई दासी बकुलावलिका दूसरी दासी कौमुदिकका से वार्तालाप के द्वारा यह सूचना देती है कि महादेवी धरिणी मालविका को राजा की दृष्टि से छिपाये रखना चाहती है।

प्रथम कालिदास शैव थे, अतः उन्होंने अपने प्रथम नाटक के प्रारम्भ (नान्दीपाठ में शिववन्दना के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' के अभिनय की सूचना दी है।

प्रथम अंक के प्रारम्भिक मिश्राविष्कम्भक में शुंग राजा अग्निमित्र की महिषी धारिणी को दो दासियाँ बकुलावलिका और कौमुदिका सूचित करती हैं कि महादेवी का भ्राता वीरसेन मालविका नाम की वनिता को उन्हें समर्पित करना चाहती है। एक दिन महाराज अग्निमित्र मालविका का चित्र देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गये। नाट्याचार्य गणदास के द्वारा राजा को ज्ञात होता है कि मालविका आचार्य से संगीत और नृत्य सीख रही है।

प्रथम अंक में राजा के प्रधान नर्मसुहृत् विदूषक की अनुपस्थिति में अन्य कार्यवाहक सचिव (विदूषक) मालविका के दर्शन की युक्ति अग्निमित्र को बताता है। यहीं पर गणदास और हरदास नाम के दो नाट्याचार्यों के विवाद से पता चलता है कि गणदास की शिष्या मालविका है और हरदास की शिष्या इरावती

है। दोनों की प्रतियोगिता के लिये भगवती कौशिकी (संन्यासिनी) प्राश्निक (निर्णायक) होती है, दोनो आचार्य अपनी शिष्याओं के माध्यम से अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित चाहते हैं।

द्वितीय अंक में राजा, महारानी परिव्राजिका एवं विदूषक रंगशाला में मालविका का नृत्य देखते हैं। मालविका के उत्कृष्ट नृत्य के कारण प्राश्निक परिव्राजिका गणदास के पक्ष में निर्णय देती है। कौशिकी द्वारा मालविका श्रेष्ठतर नर्तकी घोषित कर दी जाती है। हरिदत्त का प्रयोग समयाभाव के कारण स्थगित कर दिया जाता है।

तृतीय अंक प्रवेश से आरम्भ होता है, इसमें मधुकरिका और समाहिति का अग्निमित्र और मालविका के प्रेम सम्बन्ध की चर्चा करती हैं। प्रमदवन मे राजा विदूषक और रानी इरावती के साथ प्रविष्ट होते हैं। वार्तालाप से पता चलता है कि मालविका अग्निमित्र से मिलने के प्रयत्न में है परंतु महिषी धारिणी की तीव्र प्रतिक्रिया के कारण वे मिल नहीं पाते।

चतुर्थ अंक के कथानक में सशंकित धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को गृहागृह में छिपाकर रखा और आदेश दिया कि जब तक मेरी नागमुद्रा न दिखाई जाय तब तक उन दोनों को मुक्त न किया जाय। पर राजा के अनुरोध पर विदूषक पुनः उसे मुक्त कराने तथा राजा से मिलाने को सक्रिय है और महारानी के लिए फूल चुनते समय साँप के काटे जाने का बहाना बनाकर टरिया लेता है और उसे दिखाकर मालविका और उसकी सखी बकुलावलिका को मुक्त करवा देता है। उसके पश्चात् प्रमदवन के समुद्रगुह में मालविका और राजा के मिलन का आयोजन होता है।

पंचम अंक में दो वैदर्भी सेविकायें रहस्योद्घाटन करती हैं कि मालविका विदर्भ राजपुत्र माधवसेन की भगिनी है, माधवसेन के मातृज यज्ञसेन ने उसे बन्दी कर लिया, अतः कौशिकी को मन्त्री सुमति और राजकुमारी मालविका के साथ यहाँ आना पडा। सिद्ध की भविष्यवाणी के अनुसार मालविका को दासीरूप में रहना था, अतः आप अब इसका पाणिग्रहण कीजिए। इसी अवसर पर अग्निमित्र के पास पिता पुष्यमित्र

का पत्र आता है कि अश्वमेघ अश्व की रक्षा करते हुए कुमार वसुमित्र ने यवन सेना को पर सिन्धुदेश मे परास्त कर दिया है। और यज्ञ समाप्तप्राय है। तद्पश्चात धारिणी की अनुमति से मालविका का पाणिग्रहण अग्निमित्र से होता है और भरत वाक्य के साथ नाटकान्त हो जाता है।

नाट्यकृति की दृष्टि से "मालविकाग्निमित्र" कालिदास की प्रारम्भिक रचना है। "कालिदास के दोनों नाटकों की अपेक्षा इसमें सांस्कृतिक सम्पत्ति की मात्रा प्रचुर है। और इस सांस्कृतिक सम्पत्ति के विनियोग से न केवल नाटक का कलात्मक महत्व बढा है, अपितु ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में तथा सांस्कृतिक चित्राभिव्यक्ति में भी अधिक सफलता मिली है। इस दृष्टि से निःसदेह इस नाटक का कालिदास के अन्य नाटकों में अत्यधिक महत्व है।"[65] डॉ॰जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल ने लिखा है कि "मालविकाग्निमित्र" नाटक से कालिदास की नृत्य, संगीत, एवं चित्रकला के प्रति रूचि एवं इनमें पारंगति सिद्ध होती है। इस नाटक में कवि ने वसन्तोत्सव के अवसर पर संगीत की सुन्दर योजना प्रदर्शित की है। "इस नाटक मे श्रृंगार रस की प्रधानता है। इतिहास और नाटक का सुंदर संगम इस नाटक की बड़ी उपलब्धि है।

2· **विक्रमोर्वशीय**

"विक्रमोर्वशीय" कालिदास का एक प्रसिद्ध नाटक है। रूपक का एक भेद त्रोटक है जिसके अंतर्गत इस नाटक का समावेश किया जाता है। इस प्रस्तुत नाटक पाँच अंक में विभाजित है। इस नाटक की कथावस्तु पुरूवा की इतिहास प्रसिद्ध वैदिक और पौराणिक कथा से संबंधित है किन्तु इस कथा की पृष्ठभूमि पर कालिदास ने अपनी भिन्न दृष्टि रखकर नाटक की कथावस्तु बनी है।

नाटक के प्रथम अंक में यह दर्शाया गा है कि अप्सरा उर्वशी कैलास पर्वत पर विहार करने के लिए जाती है उस समय उसका अपहरण दैत्य असुर केशी कर लेता है। अप्सराओं के करूण-कंद्रन सुनकर विक्रमशील राजा पुरूवा उर्वशी की रक्षा

करता है। इस विक्रम अर्थात् पराक्रम के कारण इस नाटक का नाम विशिष्ट अर्थ में रखा गया है। इस समय प्रथम मिलन मे राजा पुरूरवा का उर्वशी से प्रेम हो जाता है।

नाटक के दूसरे अंक मैं प्रारंभ में प्रवेशक में सूचना दी जाती है कि राजा उर्वशी के प्रति आसक्त हो गया है। अंक के प्रारम्भ में पुरूरवा और विदूषक आपस में उर्वशी विषयक वार्तालाप करते हैं। इस समय राजा उर्वशी के प्रति अपना अनुराग बातचित द्वारा एक अन्य अप्सरा सखी के साथ वहाँ आती है और अपना प्रेमपत्र राजा के पास फेंक देती है। विशेष बात यह है कि वह भोजपत्र महिषि औशीनरी के हाथ पड जाता है। पत्र देखकर महाराणी क्रोधित होती है और पुरूरवा रानी को मनाने का प्रयास करता है।

नाटक के तीसरे अंक में यह दर्शाया गया है कि 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता भरतमुनि उर्वशी के प्रति नाराज होते हैं क्योंकि उर्वशी ने लक्ष्मी का अभिनय उचित रूप से नहीं किया है इसलिए भरतमुनि उर्वशी को मर्त्य लोकनिवास का शाप देते हैं। उर्वशी कहती है कि मैं पुरूषोत्तम (विष्णू) से प्रेम करती हूँ परंतु इन्द्र की कृपा से शाप में यह संशोधन हुआ कि पुत्र की उत्पत्ति पर्यंत वह मर्त्य लोक में रहेगी।

नाटक का चतुर्थ अंक विशेष महत्वपूर्ण है। इस अंक में यह दिखाया गया है कि जब उर्वशी "कुमारकार्तिकेयवन" मे प्रविष्ट होती है तब शिव-शाप से लतारूप में परिणित हो जाती है। इस परिवर्तन को देखकर राजा पुरूरवा अत्यंत दुःखी होता है और उसका विलाप प्रकट होता है। राजा पुरूरवा मोर को पुकारते हुए कहता है - "उजले कोनों की काँखोवाले मोर। क्या तुमने मेरी उस प्रियतमा को इस बन मे देखा है जिसकी आँखे बडी बड़ी हैं, जिसके लिए मैं व्याकुल हूँ और जो ऐसी सुन्दर है कि बस उसे देखते ही बनता है। यथा -

"नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया।
दीर्घापीङ्गे सितापाङ्गे दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत्।।"[67]

तत्पश्चात राजा पुरूरवा संगमनीय मणि की प्राप्ति हो जाती है जिसकी वजह से उर्वशी पुनः लता से मानवी बन जाती है।

नाटक के पाँचवे अंक मे पुरूरवा उर्वशी को लेकर "प्रतिष्ठान" लौटता है। वहाँ एक गिद्ध मणि को लेकर उड़ जाता है इतने में पक्षी पर एक बाण छोडा जाता है। वह बाण और किसीका नहीं होता बल्कि वह बाण पुरूरवा और उर्वशी के धनुर्धारी पुत्र "आयु" नाम के उस राजकुमार का होता है जो शत्रुओं के प्राण खींच लेता है। यथा -

"उर्वशीसंभवस्यायमैलसूनोर्घनुष्मतः।
कुमारस्योयुषो बाणः प्रहर्तुर्हृदयायुषाम"[68]

इतने में ही एक तापसी "आयु" का राजा के सम्मुख प्रस्तुत करती है। वजह यह कि उर्वशी ने अपने पुत्र "आयु" को च्यवन आश्रम में छिपाकर रखा था कि पुत्रदर्शन होते ही राजा का उर्वशी से वियोग न हो लेकिन अब वियोग की चिन्ता से दोनो ही खिन्न होते हैं। इतने में ही नारदमुनि इन्द्रलोक से सन्देश लाते हैं कि देव और असुरों के युद्ध में पुरूरवा की सहायता की देवों को आवश्यकता है।

नाटक के अन्त में यह दर्शाया गया है कि राजपुत्र "आयु" का राज्याभिषेक किया जाता है। और राजा पुरूरवा यह प्रार्थना करता है - "जो लक्ष्मी और सरस्वती सदा एक दूसरे से पीठ फेरे रहती है और जिनका मिलकर रहना बडा कठिन है, वे दोनों, सज्जनों के कल्याण के लिए एक साथ रहने लगे और सबकी आपत्तियाँ दूर हो जायँ, सब फले-फूले, सबके मनोरथ पूरे हो और चारो ओर सुख ही सुख फैल जाय। यथा -

"परस्परविरोधिन्योरे कसंश्रयदुर्लभम्।
सङ्गतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्।।
सर्वस्तरतुदुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।"

३· अभिज्ञानशाकुन्तल

'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक के सात अंक हैं। इस नाटक की रचना करके महाकवि कालिदास विश्वविश्रुत एवं विश्ववन्द्य हुये।

प्रथम अंक मे पौरवनरेश दुष्यन्त मृगयार्थ {हरिण के शिकार के लिए} कण्वाश्रम रथ पर सारार्थ के साथ-साथ जाते हैं, वहाँ मुनि नही थे परंतु युवाराजा ने कन्यात्रयी के पादपों का जलसिंचन करते हुए देखा। एक भ्रमर शकुन्तला के चारों ओर मँडराने लगा, उससे पीछा छुडाने के लिए वह चिल्लाई। उसकी पुकार सुनकर राजा लताओं मे छिपा हुआ, भ्रमर को दूर भगा देता है और शकुन्तला के रूपरस का पान करता हुआ अनेक तर्क करता है। उसके बाद उसको विश्वास हो जाता है कि यह "शकुन्तला" क्षत्रिय कन्या है ओर मुझसे प्रेम भी करती है।

"असंशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।।

वाचं न मिश्रयति यद्यपिमदचोभिः कर्ण ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसमुंखीना भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।।"[70]

अर्थात -

राजा - अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्।
अथवा कृतं संदेहेन।

यह ऋषि की कन्या कहीं दूसरे वर्ण की स्त्री से तो नहीं उत्पन्न हुई है। पर सन्देह किया ही क्यों जाय। क्योंकि जब मेरा शुद्ध मन भी इस पर रीझ उठा है तब यह निश्चय है कि उसका क्षत्रिय से विवाह हो सकता है। क्योंकि सज्जनों के मन में जिस बात पर शंका हो वहाँ जो कुछ उनका मन कहे वही ठीक मान लेना चाहिए।

अर्थात -

यद्यपि यह स्वयं मुझसे बातचीत नही करती फिर भी जब मैं बोलने लगता हूँ तब कान लगाकर मेरी बाते सुनने लगती है और यद्यपि मेरे सामने यह मुँह करके नही बैठती फिर भी इसकी आँखें मुझ पर ही लगी रहती हैं।

द्वितीय अंक में राजा और विदूषक में वार्तालाप होता है, जिसमें वह विदूषक से अपने प्रेम की बाते बता देता है। कण्वाश्रम के मुनिगण राक्षसों से बचने के लिए राजा से प्रार्थना करते हैं, और राजा ने उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया, इसी मध्य राजा को देवी वसुमती का सन्देश मिलता है कि वह व्रतपारण के अवसर राजधानी अवश्य पहुँचे। ऐसी परिस्थिति में राजा की स्थिति त्रिशंकु के समान हो गई, वह माधव्य विदूषक देवी से मेरी शकुन्तला विषयक बाते कह देगा, अतः वह कहता है कि "हे सखे! मैंने यह परिहास में कहा है, इसे सत्य मत समझना।"

तृतीय अंक में अनसूया और प्रियम्वदा, शकुन्तला के स्वास्थ की चिन्ता करती हैं। शकुन्तला राजा को पत्र लिखना चाहती है, राजा छिपकर सबकुछ देखता है और ठीक अवसर पर प्रकट होकर शकुन्तला से बातचीत करता है। तपस्विनी गौतमी के आगमन से वह अधरपान से ही पूर्व शकुन्तला से विमुक्त हो जाता है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में राजा राजधानी लौट जाता है। इसी मध्य चिंतातुर शकुन्तला के सामने दुर्वासा ऋषि प्रकट होते हैं चिंता के कारण शकुन्तला उनकी ओर ध्यान नहीं देती, अतः असत्कृत दुर्वासा शकुन्तला को शाप देते हैं -

"विचिन्तयन्ती यमनन्यमनसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।"[71]

"तुम जिसकी अनन्यमन से चिन्तन करने के कारण मुझ उपस्थित तपोधन को नहीं देख रही हो, वह पुरुष तुम्हें याद दिलाने पर भी भूल जायेगा। वह प्रमत्त के समान पूर्ववृत्तान्त को विस्मृत कर देगा।" शाप सुनकर प्रियंवदा ऋषि को प्रसन्न करने की चेष्टा करती है, तब प्रसन्न दुर्वासा शाप मे संशोधन करते है कि राजा "अभिज्ञान" (अंगुलीयक) द्वारा शकुन्तला को पहचान लेगा।

तीर्थयात्रा को गये कण्व लौट आते हैं। शकुन्तला को दुष्यन्त के पास शिष्य शारद्वत, शारदत और गौतमी के साथ भेजते हैं।

अंक के अंत में कण्व मुनि कहते हैं - प्रेम में ऐसा ही होता है। ओह! शकुन्तला को पति के घर भेजकर अब मेरे मन को छुट्टी मिली। क्योंकि - कन्या सचमुच पराई सम्पत्ति ही होती है। आज उसे पति को घर भेजकर मेरा मन वैसे ही निश्चिन्त हो गया है जैसे किसी की धरोहर लौटा दी है।" यथा -

"अर्थो हि कन्या परकीय एवं तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।"

पाँचवे अंक में शकुन्तला और राजा दुष्यन्त का विवाह वर्णित है। तत्पश्चात जहाँ राजा शकुन्तला के बार-बार स्मरण दिलाने पर भी गान्धर्व विवाह की बात भूल जाता है। राजा के द्वारा अस्वीकृत शकुन्तला को देवी शक्ति ऊपर आकाश में ले जाती है।

षष्ठ अंक में दाश (धीवर) के पास अंगूठी मिल जाती है यह दर्शाया गया है। उसे राज भटों द्वारा पकडा जाता है। इस अंक में दुष्यन्त के पश्चाताप का चित्रण हुआ है। अंगुलीयक (अंगूठी) के दर्शन से शकुन्तला का पूर्वप्रसंग स्मरण हो आया है। राजा पश्चाताप की अग्नि में जल रहा है। राजा को कोई सुन्दर वस्तु पसन्द नहीं आती और वह पहले की तरह मंत्रियों से मन्त्रणा भी नहीं करता। इधर इन्द्र का सारथी मातलि माधव्य को छिपकर पीटता है, उसके रोने की आवाज सुनकर राजा आकर देखता है। मातलि राजा से कालनेमि के इन्द्र के ऊपर आक्रमण की सूचना देकर प्रार्थना करता है कि आप इन्द्र की सहायता करें। राजा मातलि के साथ इन्द्रलोक जाता है।

सातवे अंक में दानवों पर विजय पाने के पश्चात दुष्यन्त के स्वर्ग से लौटने का दृश्य है। गन्धमादन पर्वत पर महर्षि मारीच (कश्यप) का आश्रम था, ऋषि के दर्शनार्थ राजा वहाँ जाता है तो एक बालक को सिंह के साथ खेलते हुए देखता है, उसी समय वीर बालक के हाथ में बँधी अपराजिता औषधि गिर जाती है, राजा

उसे उठाता है, यह देखकर मुनि कन्यायें आश्चर्य में पड जाती हैं, क्योंकि उस औषधि को माता-पिता के अतिरिक्त कोई स्पर्श नहीं कर सकता, अन्यथा व हगण्डा नाग बनकर उठाने वाले को ही डस लेता। इसी अवसर पर कुचैलधारिणी शकुन्तला आती है और करूण वार्तालाप के नंतर दोनों का पुनर्मिलन होता है और मारीच ऋषि तथा भरत वाक्य के साथ नाटक का अन्त होता है -

"आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव।[73]

इन्द्रतुल्य तुम्हारा पति हो और जयन्तप्रतिम तुम्हारा पुत्र {भरत} हो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई आशीर्वाद नहीं कि तुम इन्द्राणी शची के समान हो।"

भरत वाक्य है -

"प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः।
पुनर्भव परिगत शक्तिरात्मभू ::।।[74]

शासक {राजा} प्रजाहित में लग जाये, वेदवेत्ताओं की वाणी पूजित हो और स्वयंभू शक्तिरूप में परिणित होकर भगवान शंकर मेरे पूर्व जन्म का नाश करे, मुझे मोक्ष प्रदान करे।

कालिदास के तीनों नाटकों में "अभिज्ञानशाकुन्तल" सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इस नाटक में नाट्यकला, काव्यकला या सर्वोत्तम परिपाक {चरमोत्कर्ष} मिलता है।

इसमें सन्देह नहीं कि कविवर कालिदास का "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वोत्कृष्ट कलाकृति है। भारत के ही नहीं विश्व के विद्वानों ने इस नाटक की बडी प्रशंसा की है। जर्मन कवि गेटे ने इस काव्य की प्रशंसा करते हुए कहा है - "यौवनरूपी वासन्तिक कुसुम सौरभ और प्रौढ़ता रूपी ग्रीष्म के मधुर फलों को अथवा अमृततुल्य मानस को संतप्त एवं मोहित करने वाली किसी

अन्य वस्तु को यदि देखना चाहते हो अथवा पार्थिव ऐश्वर्य एवं स्वर्गीय सुषमा का अपूर्व सम्मिलन एक ही स्थान पर देखना चाहते हो तो अभिज्ञानशाकुन्तल का अवलोकन कीजिये।"[75]

आंग्ल विद्वान लेखक डॉ·ए·बी·कैथ ने भी इस नाटक की सराहना की है - "कालिदास के नाटक के बारे में कहा जा सकता है कि उनका "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक संस्कृत के अभिजात्य-साहित्य में सर्वोत्कृष्ट है। इस नाटक से कालिदास को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। लेकिन गीतिकाव्य और महाकाव्य में भी कालिदास भारतीय लेखकों में प्रथम श्रेणी का स्थान प्राप्त करते हैं।[76]

कालिदास : काव्य और नाट्यकला

कालिदास मुख्यतया प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य, उपमा, श्रृंगार आदि के चितेरे हैं। उनकी नाट्यकला अनुपम है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति और मानव का घनिष्ठ तथा अन्योन्य संबंध है। प्रकृति के सौन्दर्य से कोई भी मनुष्य उसकी ओर सहज आकृष्ट होता है। लेकिन कवि का हृदय अधिक संवेदनशील और प्रतिभाशाली होने के कारण वह अपने काव्य या साहित्य में प्रकृति करा चित्रण बडे मार्मिक तथा आकर्षक शब्दों में करता है। सामान्यतया यह दिखाई देता है कि हमारे कवियों ने प्रकृति नारी के रूप में देखने-परखने का प्रयास किया है और इसी कारण कवियों की कविता कामिनी प्राकृतिक सौन्दर्य से सजीधजी है।

कविवर कालिदास ने आम्रकूट पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य का बडा ही मनोहारी वर्णन किया है। इसमें कवि ने यह दर्शाया है कि जब मेघ जल बरसते जा रहा होगा तब अथप के हरे-पीले कदम्ब के फूलों पर मँडराते हुए भौरे, दलदलों में नई फूली हुई कन्दली-की पत्तियों को चरते हुए हरिण और जंगली धरती का तीखा सूँघते हुए हाथी, तुम्हें मार्ग बताते चलेगे। यथा -

"नीपं दृष्टवा हरितकपिशं केसरै··र्ध··ढै
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।"[77]

कालिदास का शाकुन्तल नाटक प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी अपना अनन्य साधारण महत्व रखता है। नाटक की नायिका शकुन्तला है जो अतीव सुन्दरी है। नाटक के प्रथम अंक में यह दिखाया गया है कि यद्यपि इसका कोमल शरीर वल्कल के योग्य नहीं है, फिर भी ये इसके शरीर को अलंकारो के समान ही सुशोभित कर रहे हैं। क्योंकि जैसे सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है और चन्द्रमा में पडा हुआ कलंक भी उसकी शोभा बढता है वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कल पहने हुए बडी भली दिखायी पड़ रही है। सच्ची बात तो यह है कि सुन्दर शरीर पर सभी कुछ शोभा देने लगता है।

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति।
इयमधिकमनोज्ञावल्कसेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणा मण्डनं नाकृतीनाम्।[78]

शकुन्तला नाटक के चौथे अंक के उन्नीसवे श्लोक में कण्व मुनि द्वारा शकुन्तला के पतिगृह जाने के प्रसंग के कवि ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। कण्व कहते हैं - "वन-देवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षों! जो पहले तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी, तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों को देख-देखकर फूली नहीं समाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब इसे प्रेम से बिंदा तो दो।

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[79]

महाकवि कालिदास का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उनके काव्यों में प्रकृति अपने स्वाभाविक विलास को लेकर स्पन्दित हो उठी है। वे प्रकृति को सजीव तथा मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानते है। उनके अनुसार मानव के ही समान वह भी सुख तथा दुःख का अनुभव करती है। उन्होंने अपने 'ऋतुसंहार' नामक काव्य में वे ऋतुओं के प्राकृतिक रूप का विश्लेषण करते हैं। वसन्त वर्णन देखिए -

"रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः पुँस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः।
मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य॥[80]

अर्थात -

रमणीय प्रदोष समय, प्रस्फुटित चन्द्रिका, कोयल की कूक, सुगंधित वायु, भौरों का गुंजन तथा रात्री में वारुणी सेवन "ये सभी कुसुमायुध"भगवान कामदेव के उद्दीपक रसायन हैं। इस मीमांसा में कवि रवीन्द्र लिखते हैं - "इसमें जो तरुण तरुणियों का मिलन संकेत है उसका स्वरग्राम लालसा के निम्न सप्तक से शुरू हुआ है, परंतु कवि ने नवयौवन की इस लालसा को प्रकृति के विचित्र और विराट सूर के साथ मिलाकर मुक्त आकाश में उसे झंकृत कर दिया है। वर्षा में नवीन जलसिंचन से तापहीन शांत वनान्त में नाच रही हैं। आपक्वशालि रुचिरा शारदलक्ष्मी अपनी हंस नुपूर ध्वनि को इसके ताल पर बजा रही है और वसन्त के दक्षिण पवन से चंचल कुसुमित आम्रशाखा का मर्मर गुंजन इसी की तान में विस्तीर्ण हो रहा है।

"रघुवंश" में कवि ने प्रकृति के उदात्त रूप का सुन्दर चित्रण किया है-

"क्वचित्र भालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुसिद्धा ।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव।।

क्वचित्खगबानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्त पत्रा भक्तिर्मुर्वश्चन्दनकल्पितेव।।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा।[81]

अर्थात -

हे सुन्दरी । देखो यमुना की सांवली लहरों से मिली हुई उजली लहरोंवाली गंगाजी कैसी सुन्दर लग रही हैं। कहीं तो ये चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई माला जैसी लगती है, कहीं नीले और श्वेत कमलों की मिली हुई माला जैसी लगती है, कहीं नीले और श्वेत कमलों की मिली हुई माला जैसी दिखई पडती है।

अर्थात -

कहीं सांवले रंग के हंसो से मिले हुए उजले रंग के राजहंसो की पाँत के समान शोभा दे रही है, कहीं श्वेत चन्दन से चीती हुई पृथ्वी पर बीच-बीच में काले अगर से चीती हुई-सी लग रही है।

अर्थात -

कहीं कहीं ये वृक्ष के नीचे की उस चाँदनी के समान लगती है जिसके बीच-बीच में पत्तों की छाया पडी हो और कहीं कहीं पर शरद ऋतु के उन उजे बादलों के समान जान पडती है, जिनके बीच-बीच में नीला आकाश झाँक रहा हो।

"क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगरागा ननुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि· विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा युमनातरंगे :।"[82]

यहाँ कवि ने गंगा-यमुना के सुन्दर संगम के चित्र को खींचा है। कवि का यह प्रकृति-चित्रण व्यापार मानवीकरण की ओर प्रवृत्त होता है। 'कुमारसम्भव' की पार्वती प्रकृति की मानवी कृति है। आलस्य छोड़कर पार्वती ने जिन छोटे पौधों को अपने कुचसदृशकलशों के जल से सींच-सींच कर पाला था उन्हें वह इतना प्यार करती थी कि जब स्वामी कार्तिकेय का जन्म हो गया तो भी उनका वात्सल्य उन

पौधों पर कम नहीं हुआ -

"अतन्द्रिता सा स्वयंमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्यवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति।।[83]

"शाकुन्तल" नाटक तक पहुँचते पहुँचते तो उनका प्रकृति के साथ मानवमय संबंध हो जाता है। "शाकुन्तल" के प्राकृतिक स्वरूप को ही देखकर रवीन्द्रनाथ लिखते हैं - "शाकुन्तल नाटक में अनसूया प्रियम्वदा कण्व और दुष्यन्त जैसे एक-एक पात्र हैं वेसे तपोवन भी एक विशेष पात्र है। शाकुन्तल की शकुन्तला प्रकृति की पुत्री है।"

"शाकुन्तल" के चतुर्थ अंक में मानवात्मा के प्रति प्रकृति की सहानुभूति का वर्णन हुआ है। वनदेवता शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं और उसे चमकीले रेशमी वसन तथा आभूषणों का उपहार प्रदान करते हैं। कोयल ध्वनि से उसे वन का सन्देश सुनाती हैं। कोयल कहती है - "कल्याणमय हो इस शकुन्तला की यात्रा। इसके मार्ग में बीच बीच में नीली कमलियों से भरे हुए ताल हो, नियम से थेडी थोडी हुरी पर लगे हुए, धूप से बचनेवाली घनी छाँहवाले वृक्ष हो, धूल मे कमल के पराग की कोमलता हो और मार्ग-भर सुख देने वाला पवन बहता चले।" यथा-

"रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि–
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूरव तापः।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।[84]

इसमें संदेह नही कि कालिदास के साहित्य में रेखांकित प्रकृति-चित्रण स्वाभाविक तथा आकर्षक बन पडा है। प्रकृति के मानवीकरण के रूप में इस चित्रण का विशेष महत्व है उनके काव्यों और नाटको में प्रकृति-नटी के कार्यव्यापार इतने सुन्दर बन पडे हैं कि जैसे किसी उद्यान में सहस्त्री सुगंधित फूल बिखरे हुए दिखाई देते हैं और रसिकगण उनकी सुगन्ध से मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। कालिदास के प्रकृति-चित्रण

के बारे में करूणापति त्रिपाठी के विचार समीचीन ही हैं - "जहाँ वे {कालिदास} एक ओर हिमालय का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है, वही दूसरी ओर औषधिप्रस्थ पूरी के, हिमालय-निवासी यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओं के, अलका के, सुमेरू के और गन्धमादनादि केक काल्पनिक वर्णन में भी उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।"[85] कालिदास का जन्मस्थान ही मूलतः प्रकृति-सुन्दरी से सुशोभित है और कालिदास की प्रकृति भी सौन्दर्यशालिनी है। अतः उनके समग्र साहित्य में प्रकृति के विविध रूप रूपायित हुए हैं जो उचित ही हैं। इस प्रकृति चित्रण में कवि की काव्यप्रतिभा की किरणे यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं।

सौन्दर्य विधान

महाकवि कालिदास परम सौन्दर्य प्रेमी है। उन्होंने अपने काव्यों में सुन्दर स्वरूपपों को उपस्थिति किया है, अतः उन्हें सौन्दर्य का कवि कहा गया है। पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं -

"दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेलाज्जोत्स्नान्तराणीव कालन्तराणि।।"[86]

पार्वती चन्द्रकला के समान शनैः शनैः बढने लगी और जिस प्रकार चाँदनी के बढने के साथ-साथ चन्द्रमा की अन्य कलायें भी बढने लगी हैं त्यों-त्यों उसके सुन्दर अंग भी सुडौल होकर बढ़ने लगे हैं।

पार्वती के निर्मल मुस्कराहट का वर्णन इसप्रकार हैं -

"पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्यादिशस्यतस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः ।।"[87]

यदि फूल प्रवालों से घिरा हुआ हो अथवा मोती विद्रुम मणियों के बीच में स्थित हो तभी वह पार्वती के ताम्रवर्ण औष्ठों के चारों ओर फैली हुई निर्मल मुस्कराहट का अनुकरण कर सकता है।

महाकवि कालिदास की रूचि वास्तविक सत्य सौन्दर्य में है। वे कृत्रिम सौन्दर्य के पक्षपाती नहीं हैं। शकुंतला का सौन्दर्य देखिए -

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।"[88]

अर्थात -

जैसे सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है और चन्द्रमा में पडा हुआ कलंक भी उसकी शोभा ही बढ़ाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कल पहने हुए बडी भली दिखाई पड रही है। सच्ची बात तो यह है कि सुन्दर शरीर पर सभी कुछ शोभा देने लगता है। आकाशवाणी के रूप में वनदेवों के आशीर्वाद उनकी प्राणप्यारी शकुन्तला को प्राप्त होते हैं। कवि कहता है -

"उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ ।।"[89]

{शकुन्तला की बिदाई से दुःखी होकर} हरिणियाँ चबाई कुशा के कौर उगल रही है, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है, और लताओं से पीले-पीले पत्ते इसप्रकार झड रहे हैं, मानो उनके आँसू गिर रहे हो। "शाकुन्तल" के छठे सर्ग में पश्चाताप की अग्नि में झुलसती दुष्यन्त की आत्मा को प्रकृति अपना स्निग्ध मरहम लगाती चित्रित की गई है।

शाकुन्तल के सप्तम अंक में कवि का प्रकृति-वर्णन बडी ऊँचाई पर पहुँच जाता है नहीं पृथ्वी के कष्ट एवं यातनाएँ नहीं हैं, और न स्वर्ग के आनन्द हैं। परंतु वह सम्पूर्ण स्थल शान्ति, तपस्या तथा पूजन के वातावरण में निमज्जित है। और दुष्यन्त आनन्दातिरेक में चिल्ला उठता है -

"स्वर्गादधिकतर निर्वृतिस्थानम् अमृतहृदमिवावगाढोऽस्मि"[89]

"यह स्थान से भी बढ़कर शान्तिपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं "अमृत के कुण्ड में अवगाहन कर रहा हूँ।"

महाकवि कालिदास के "मेघदूत" महाकाव्य में "पूर्वमेघ" में प्रणय-कातर प्रेमी सृष्टि के सौन्दर्य पर रूकता-थिरकता है। प्रेम की महिमा स्थापित करना "मेघदूत" का प्रमुख उद्देश्य है। प्रकृति के सम्पूर्ण साम्राज्य में इस जानकारी से कि प्रणय का दूत एक महान अनुष्ठान लेकर यात्रा कर रहा है, सर्वत्र अनुकुलता, सहानुभूति तथा सेवा-सहाय की तत्परता व्याप्त हो गई है। अनुकूल पवन मन्द-मन्द गति से सौम्य, षयोद को आगे बढा रहा है, गर्व से भरा पपीहा बाई ओर आकर मधुर ध्वनि कर रहा है, गर्भाधान का उत्सव माननेवाली बलाकाएँ पंक्तिबद्ध होकर उसकी सेवा के लिए सन्नद्ध है, और प्रिय सखा तुंगशैल अपना कंठालिंगन देने के लिए आतुर हो, आँसू बहाता अपना स्नेह प्रकट कर रहा है।

"कुमारसम्भव" के कथानक का घटनास्थल गिरिराज हिमालय का प्रदेश है, अतः कवि ने हिमालय पर्वत का जो भव्य वर्णन आरम्भ में किया है, वह उचित एवं प्रसंगानुकूल है। प्रथम छन्द -

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवातात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।[90]

हिमालय की कुछ चोटियों पर गेरू इत्यादि धातुओं की अनेक रंग-बिरंगी चट्टाने हैं, इस कारण, कभी कभी उन चट्टानों के समीप पहुँचे हुए बादलों के टुकडे, उनके रंग की छाया पड़ने से सन्ध्या के बादलों - जैसे पहले ही वहाँ की अप्सराओं को सन्ध्या का भ्रम हो जाता है और वे नाचते-गाने के लिए अपना श्रृंगार करने लग जाती है।" कुछ चोटियाँ इतनी ऊँची उठी हैं कि मेघ भी उनके बीच तक ही पहुँचकर रह जाते हैं, उनका ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिए बिचले भाग मे छाया का आनन्द लेनेवाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होने से घबड़ा उठते हैं, यहाँ के सिंह जब हाथियों को मारकर चले जाते हैं, तब रक्त से लाल उसके पंजों की पड़ी हुई छाप हिम की धारा से धुल जाती

है। फिर भी, सिंहों के नखों से गिरी हुई गजमुक्ताओं को देखकर किरात यह जान जाते हैं कि सिंह किधर गये हैं। इस पर्वत पर उत्पन्न होने वाले जिन भोजपत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाथी की सूँड पर बनी हुई लाल बिन्दिया जैसे दिखते हैं, उन्हें विद्याधरियाँ अपने प्रेमपत्र लिखने के काम मे लाती है। जब यहाँ के हाथी देवदास के वृक्षों के साथ कनपटी खुजलाने के लिए अपने मस्तक रगडने लगते हैं तब उनसे ऐसा दूध बहने लगता है जिससे सभी चोटियाँ सुगन्धित हो उठती हैं।

"मालविकाग्निमित्र" के दूसरे अंक के बारहवे श्लोक तथा "विक्रमोर्वशीय" के दूसरे अंक के बाइसवे श्लोक के मध्याह्न को प्रभोवात्पादक चित्रण है।

हंस कमलों की छाया में अपने नेत्र बन्द कर विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा जल रहा है कि छज्जो पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं। चलते हुए रहँट से उछलती हुई पानी की बूँदे पीने के लिए मोर उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। भौरा कनेर की कली का मुँह खोलर उसमे छिपने का उपक्रम कर रहा है। क्रीडा मन्दिर के पिंजडे में पडा हुआ सुग्गा क्लान्त होकर पानी माँग रहा है और सूर्य अपनी समग्र किरणों के साथ ऐसा चमक रहा है जेसे राजा अपने सब राजसी गुणों से चमकते हैं -

"पत्रच्छायासु हंसामुकुलितनयना दीर्घिका पद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापादलभिपरिचयदोषपारावतानि ।
बिन्दुक्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमदारियन्त्रं
सर्वैरूस्त्रैः समग्रैस्त्वमिवनृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः[91]

<u>उपमा कालिदासस्य</u>

कालिदास की कृतियों में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। महाकवि कालिदास की उपमायें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उनमें उपमा सौन्दर्य सम्बन्धि सभी गुण विद्यमान हैं। उन्होंने प्रायः उपमा के सभी भेदों को स्थान दिया है। उनकी उपमाओं में सत्यं शिवं सुन्दरम् की सुन्दर त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। आगे राजा दिलीप है,

मध्यम में नन्दिनी और उसके पीछे रानी सुदक्षिणा। कवि नन्दिनी एवं रानी की उपमा श्रुति एवं स्मृति दे देता है - "श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्"। जिसप्रकार स्मृतियाँ श्रुति के अर्थ का अनुसरण करती है उसी प्रकार सुदक्षिणा नन्दिनी का अनुगमन कर रही है। इन्दुमती के स्वयंवर में कुमारी इन्दुमती जिस जिस राजा का परित्याग करती है उसी का मुख निराशा की कालिमा से ऐसा मलिन हो जाता है जैसे रात्रि में राजमार्ग के वे महल जिन्हे दीपाशिखा पीछे छोड़कर आगे बढ जाती है -

"सञ्चारिणी, दीपाशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः।।"[92]

यहाँ इन्दुमती की उपमा दीपाशिखा से दी गई है जो कि साभिप्राय है। शकुन्तला के अधर नूतनकिसलय सदृश्य हैं। बाहुयुगल कोमल विश्व सदृश्य हैं और फूल के समान कमनीय एवं आकर्षक यौवन उसके अंगों में अभिव्याप्त है -

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ।।"[93]

शकुंतला के लाल ओठ, लता की कोंपलों जैसे लगते हैं। दोनो भूजाएँ कोमल शाखाओं जैसी जान पडती हैं और इसके अंगों में खिला हुआ नया यौवन लुभावने फूल के समान दिखाई दे रहा है।

कितनी सुन्दर, कमनीय एवं आकर्षक उपमा है। यदि एक पक्ष में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हुआ है और श्रृंगार का मधुर रस छलक रहा है। मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों के लिए वे प्रसिद्ध हैं। उनकी उपमाओं में सजीवता, सरसता और स्वाभाविकता है। वे सर्वजनीन हैं, उनमे काव्यात्मक सौन्दर्य बढ़ाने की अनुपम क्षमता है अतएवं "उपमा कालिदासस्य" कथन सर्वथा उचित है।

"मेघदूत" में यक्ष विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों में यक्षिणी के अंग-प्रत्यंगों का सादृश्य देखना चाहता है -

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं।
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्।
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।"[94]

"प्रियंगलताओं मे तुम्हारे अंग की कोमलता, चकित हरिणीप्रेक्षणों में तुम्हारी दृष्टिभंगिमा, चन्द्रमा में मुखछवि, मयूरों की पुच्छों में केशभार, लघु नदी लहरों में तुम्हारे भ्रूविलास का सादृश्य देखना चाहता हूँ, परन्तु हे चण्डि! तुम्हारा सादृश्य कहीं भी नहीं है।

मेघदूत में कवि ने अलकापुरी के प्रासादों से मेघों की तुलना की है -

"विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः।
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः।
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं तैस्तैर्विशेषैः ।।"[95]

हे मेघ! तुम विद्युतवान हो, प्रासाद वनितामय है, तुम्हारे ये इन्द्रधनुष्य हैं, प्रासादों में मृदंग के सान्द्र मन्द्र ध्वनि, मेघों में जल भरा है, प्रासादों की मणिमय भूमियाँ तत्तुल्य है, मेघ आकाश को छूते हैं, उसी प्रकार वे प्रासाद गगनस्पर्शी हैं।

"रघुवंश" में गुरु वशिष्ठ ने दिलीप को कजभूल का आहार करते हुए नन्दिनी की सेवा उसी भाँति करने को कहा जिस प्रकार शिष्य सतत शास्त्राभ्यास से विद्या प्राप्त करता है -

"वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ।"[96]

राजा दिलीप ने नन्दिनी के दुग्ध का पान उसी प्रकार किया जिस प्रकार मानों अपने मूर्तिमान शुभ्र धवल यशः का पान किया हो।

"पपौ वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः"[97]

यद्यपि "ऋतुसंहार" कालिदास की प्रथम काव्यरचना है फिर भी उसमें कवि द्वारा दी गयी उपमाएँ बड़ी मनोहारी हैं। "ऋतुसंहार" के दूसरे सर्ग में कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन में वन के वर्णन में कवि ने मानो उपमाओं का खजाना ही पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। वन का खिल-खिलाकर हसना बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है यथा -

"मुदित इव कदम्बजातपुष्पैः समन्तात्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव।
हसितमिव विवृत्ते सूचिभिः केतकीनां नवसलिलनिषेकोच्छ्वन्नतापो वनान्तः।[98]

अर्थात -

वन में चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूल ऐसे लग रहे हैं मानो वर्षा के नये जल से गर्मी दूर हो जाने पर जगल मगन हो उठा हो। पवन से झूमती हुई शाखाओं को देखकर ऐसा लगता है मानो पूरा का पूरा जंगल अपने हाथ मटका-मटकाकर नाच रहा हो। और केतकी की उजली कलियों को देखकर ऐसा लगता है मानो जंगल खिलखिलाकर हँस रहा हो।

काव्य-कला की दृष्टि से कालिदास का काव्य उपमाओं के लिए विशेष प्रसिद्ध है। कवि माघ के किसी प्रशंसक ने निम्नलिखित उक्ति का प्रयोग किया है जिसमें कालिदास की उपमा भारवि की अर्थगौरव की स्थापना नैषध काव्य के प्रणेता पदलालित्य की उद्‌भावना मे विशेष ख्यातिप्राप्त है। यथा -

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधेपदलालित्यं माघेसन्तित्रयोगपः।

इसमें संदेह नहीं कि समस्त संस्कृत कवियों में उपमा अलंकार के लिए कालिदास विश्वविख्यात हुए हैं। काव्य के कलापक्ष का इतना मनोहारी चित्रण अन्यत्र मिलना

दुर्लभ है।

उपमा अलंकार के अतिरिक्त कालिदास के साहित्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, बक्रोक्ति आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

रसराजः श्रृंगारः

श्रृंगार को रसों का राजा कहा जाता है। श्रृंगार के मुख्य दो भेद हैं - 1·संयोग श्रृंगार, 2·वियोग श्रृंगार कविवर कालिदास के काव्यों और नाटकों में दोनों ही प्रकार के श्रृंगार का वर्णन मिलता है। कालिदास को सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति "अभिज्ञान-शाकुन्तल" है। उसका मुख्यरस श्रृंगाररस है। नाटक के प्रथम अंक में बाईसवें श्लोंक में श्रृंगार का वर्णन बड़ा ही विलोभनीय है -

"चलापाङ्गां दृष्टः स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिनचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हस्तात्वं खलु कृती।[99]

अर्थात -

भरे भौंरे, तुम सचमुच बड़े भाग्यवान हो। इधर हम तो सच्ची बात की खोज में ही लुट गए, उधर तुम इसकी चंचल चितवन से देखे जाते हुए इस काँपती हुई बाला को बार-बार छूते जा रहे हो, उसके कानों के पास जाकर ऐसे धीरे-धीरे गुनगुना रहे हो मानो कोई बड़े भेद की बात उसे सुनना चाहते हो और बार-बार उसके हाथों से झटके जाने पर भी तुम उसके रस-भरे अधरों का रस पीते ही जा रहे हो।

"कुमारसम्भव" का आठवाँ सर्ग तो श्रृंगार रस से परिपूर्ण है। "मेघदूत" का यक्ष और "रघुवंश" के अज का विलाप करूपरस के उत्कृष्ट उदाहरण है। श्रृंगार और करूण रस के अतिरिक्त कवि ने वीररस का भी प्रयोग अपने साहित्य में किया गया है।

कावेष्यु नाटकं रम्यम्

यह उक्ति विशेष लोकप्रिय हुई है। कालिदास की नाट्यकला की दृष्टि से इस उक्ति का विशेष महत्वपूर्ण है। यद्यपि काव्यकला सर्वश्रेष्ठ कला है फिर भी उस काव्यकला में नाटक के मंचीय प्रदर्शन के कारण वह अधिक रमय बन जाती है और दर्शक उसका आस्वाद सहज ही कर सकते हैं।

कालिदास का मानना हैं कि कला का प्राथमिक साक्षात्कार कलाकार के चित्त किंवा अन्तर्मानस में होता है। वही कला की असली प्रतिमा निर्मित होती है और उस निर्मिति में कलाकार का रचनाशील मन ही सम्पूर्ण करता है। दुष्यन्त शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य पर रीझ कर कहता है -

"चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।"[100]

"ब्रह्मा ने सबसे पहले शकुन्तला की मूर्ति को चित्त में रूपायित किया होगा, अन्यथा वह {स्त्रीरत्न} उत्पन्न हो नहीं सकती थी। बिना मन के सक्रिय सहयोग के कला वा कविता रूपग्रहण नहीं कर सकती। कालिदास कला की सृष्टि में इस "मानसिक समाधि" को परमावश्यक मानते हैं।

कालिदास ने पुरानी वर्णनात्मक शैली का परित्याग कर, कथावस्तु को नितान्त कलात्मक ढंग से सजाया है। अपनी पहली नाट्य-रचना में ही कवि ने प्रयोगों की नव्यता के विषय में अपने सामाजिकों को एक प्रकार की चेतावनी-सी देता है -

"पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।"[101]

अर्थात -

पुराने होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते हैं, न नये होने से सब बुरे होते हैं। समझदार लोग तो दोनों को परखकर उनमें से जो अच्छा होता है उसे अपना लेते हैं और जिन्हें अपनी समझ होती ही नही हैं उन्हें तो जैसा दूसरे समझा देते हैं उसे ही वे ठीक मान बैठते हैं।

कालिदास ने नाट्य-वस्तु को सजाने में एक विशिष्ट प्रणाली का अनुगमन किया है। सभी नाटकों में नायिका पहले विपन्न अवस्था में प्रस्तुत की जाती है और नायक उसकी ओर उपकार-भावना से आकृष्ट होता है। मालविका दासी-रूप में अपनी सुन्दरता के कारण अग्निमित्र की चित्त-भूमि को आर्द्र बनाती है। उर्वशी की अवस्था अत्यन्त विपद्‌गस्त हैं जब पुरूखा उसको राक्षसों के ग्रह से छुड़ाता है। शकुन्तला वृक्षसेचन में निरत होकर, अपने अपने भाग्य के विपर्यय से दुष्यन्त को आकृष्ट करती है और जब भ्रमर उसके अधर का पान कर उसे परेशान करना है तब दुष्यन्त भौरों से शकुन्तला की रक्षा करता है। नायिका के उपकार के प्रति कृतज्ञता भाव से नायिका का आकर्षण चित्रित करना कालिदास की "टेकनीक" का एक महत्वपूर्ण अंग है।[102]

कालिदास की सभी नायिकाओं की स्थिति लगभग समान है, चाहे वह उर्वशी हो, चाहे शकुन्तला, चाहे पार्वती, चाहे यक्षिणी, चाहे सीता। कवि बार-बार प्रेम तथा वियोग को अपने चित्रण का आधार बनाता है और बार-बार प्रेमियों का पुनर्मिलन सम्पन्न होता है।

कालिदास के नाटकों की तीनों नायिका मालविका, उर्वशी और शकुन्तला, इनको अपनी सुन्दरता के कारण राजाओं का प्यार प्राप्त हुआ है।[103] कालिदास के नाटक अंकों में विभाजित हैं। उनके नायक और नायिकाएँ ऐतिहासिक या पौराणिक हैं। तथा नाट्य-तंत्र की दृष्टि से भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार उनकी रचना हुई है फिर भी कालिदास की अपनी नव-नाट्य कला भी उनके नाटकों में अंतर्भूत है।

निःसंदेह कालिदास के ग्रंथ संस्कृत साहित्य के सबसे उज्ज्वल रत्न हैं। ओज प्रमाद आदि गुणों और उपमा आदि अलंकारों की दृष्टि से संस्कृत का अन्य कोई भी काव्य इनका मुकाबला नहीं कर सकता।

जब तक संस्कृत भाषा का अध्ययन जारी रहेगा, कालिदास का नाम भी संसार मे अमर रहेगा। यह कहना जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है, कि कालिदास संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसकी कृतियाँ इतिहास ओर साहित्य में सदा अमर रहेगी। रघुवंश में रघु की दिग्विजय का जो वर्णन किया गया है, उसे लिखते हुए समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा सम्भवतः कालिदास के सम्मुख थी। उसके ग्रन्थों पर गुप्त-काल की समृद्धि और गौरव की स्पष्ट छाप है।[104]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि -

1. संस्कृत कविकुलगुरू महाकवि कालिदास की जीवनी के बारे में ठोस जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अपने काव्य और नाट्य-ग्रन्थों में भी उन्होंने कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है। उनके साहित्य में उनके पूववर्ती संस्कृत कवियों का उन्होने उल्लेख किया है, और कुछ नहीं।

2. कालिदास के आविर्भाव या जन्मतिथि के बारे में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने उनका आविर्भाव इस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी या छठी शताब्दी या गुप्तकाल माना है। अधिकतर विद्वानों और इतिहासकारों ने कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" का समकालीन और राज्याश्रित माना है।

3. कालिदास के जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों में मतभेद हैं, तथापि अधिकतर विद्वान कालिदास को मालवा के निवासी तथा उज्जयिनी में काव्य-साधना में रत मानते हैं।

4· कालिदास के चार काव्य-ग्रन्थ और तीन नाटक ग्रंथ सभी विद्वानों ने स्वीकार किये हैं। कालिदास का "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" नाटक उनकी कारयत्री और भावयत्री प्रतिभा का मणिकांचन योग है। यह नाटक अमर कवि की अमर रचना है।

5· कालिदास के साहित्य के मुख्य प्रेरणास्त्रोत प्राकृतिक सौन्दर्य और गुप्तवंशीय राजदुहिता प्रियंगुमंजरी है।

6· कालिदास की साहित्य-साधना में काव्य और नाट्य का मनोहारी संगम है। कालिदास का प्रकृति-चित्रण सौन्दर्य-विधान, तथा उपमा-विधान विशेष उल्लेखनीय है। कालिदास मुख्यतया श्रृंगारी कवि हैं। श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष का लुभावना चित्रण उनकी काव्यकला की चरमसीमा है। अज-विलाप और यक्ष-विलाप अप्रतिम है।

7· कालिदास के साहित्य में गुप्तकालीन स्वर्णयुग का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक चित्र प्रचुर मात्रा में प्रतिबिंबित हुआ है जो उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। संक्षेप में कालिदास भारतीय संस्कृति के तथा गीर्वाण वाणी के अमर गायक हैं। यथा -

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वरः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।"

संदर्भ

1· संस्कृत साहित्य का इतिहास - प्रो·शिवबालक द्विवेदी, पृ·31, संस्क·1976

2· संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ·जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ·60, संस्क·1969

3· कालिदास - चंद्रबलि पांडे, पृ·61, संस्क·1986

4· संस्कृत कवि-दर्शन - डॉ·भोलाशंकर व्यास, पृ·78-79, संस्क·वि·संवत् 2025

5· वही, पृ·79-80

6· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवतशरण उपाध्याय, पृ·66, संस्क·1969

7· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·17, संस्क·1988

8. The Sanskrit Drama - A.B.Keith, P.146-147 Ed.1924
'It is, therefore, most probable that he flourished under Chandragupta II of Ujjayini, who ruled up to about A.D.413 with the style of Vikramaditya, which is perhaps alluded to in the of name Vikramorvaci, while the Kumarasamhava's title may well hint a compliment on the birth of young Kumaragupta his Son and successor.

9· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·17-18, संस्क·1988

10· कालिदास - चंद्रबलि पांडे, पृ·39, संस्क·1986

11· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·18-19, संस्क·1988

12· वही, पृ·20

13· वही, पृ·20-21

14· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड "मेघदूतम्" , सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·408, संस्क·वि·सं·2019

15· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·20-21, संस्क·1988

16· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवतशरण उपाध्याय, पृ·96, संस्क·1969

17· कालिदास गंथावली - प्रथम खण्ड "मेघदूतम्" सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·399, संस्क·वि·सं·2019

18· वही, पृ·398

19· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·25, संस्क·1988

20· Classical Sanskrit Literature - A.B.Keith, P.23, Ed.1966

His evident affection for Ujjayini suggests that he spent much of his time in that state, which was brought under Gupta rule by Chandragupta himself.

21· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवतशरण उपाध्याय, पृ·96, संस्क·1969

22· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·25-26, संस्क·1988

23· संस्कृत साहित्य का इतिहास - प्रो·शिवबालक द्विवेदी, पृ·28-30, संस्क·1976

24· वही, पृ· 30

25· कालिदास - चंद्रबलि पांडे, पृ·33-34, संस्क·1986

26· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·26, संस्क·1988

27· कालिदास - चंद्रबलि पांडे, पृ·37, संस्क·1986

28· वही, पृ·31

29· संस्कृत साहित्य का इतिहास - प्रो·शिवबालक द्विवेदी, पृ·38, संस्क·1976

30· कालिदास - चन्द्रबलि पांडे, पृ·3, संस्क·1986

31· संस्कृत ललित साहित्य का इतिहास - डॉ·कुँवरलाल व्यास शिष्य, पृ·113-114

32· कालिदास ग्रन्थावली - प्रथम खण्ड ⸨रघुवंशम⸩ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·71, संस्क·वि·सं·2019

33· संस्कृत कवि-दर्शन - डॉ·भालचंद्र व्यास पृ·80-81, संस्क·वि·संवत् 2025

34· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवत्शरण उपाध्याय, पृ·97 संस्क·1969

35· भारत का प्राचीन इतिहास - डॉ·सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ·527-528, संस्क·1967

36· भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास - बी·एन·लूनिया, पृ·183, संस्क·1971

37· प्राचीन भारतीय संस्कृति - बी·एन·लूनिया, पृ·485, सं·1970

38· भारत का प्राचीन इतिहास - सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ·538, संस्क·1967

39· वही, पृ·538

40· वही, पृ·538-542

41· वही, पृ·561

42· प्राचीन भारतीय संस्कृति - बी·एन·लूनिया, पृ·496, संस्क·1970

43· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवतशरण उपाध्याय, पृ·86-87, संस्क·1969

44· प्राचीन भारतीय संस्कृति - बी·एन·लूनिया, पृ·502-507, संस्क·1970

45· भारत का प्राचीन इतिहास - सत्यकेतू विद्यालंकर पृ·553-555, संस्क·1967

46· भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास - बी·एन·लूनिया, पृ·205-209, संस्क·1971

47· वही, पृ·201-202

48· प्राचीन भारतीय संस्कृति - बी·एन·लूनिया, पृ·521, संस्क·1970

49· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡ऋतुसंहारम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·427, संस्क·वि·सं·2019

50· वही, पृ·435

51· वही, पृ·440-441

52· वही, पृ·448

53· वही, पृ·455

54· गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवतशरण उपाध्याय, पृ·98, संस्क·1969

55· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡मेघदूतम्‡ सम्पा·-सीताराम चतुर्वेदी, पृ·405, संस्क·वि·सं·2019

56· वही, पृ·408

57· वही, पृ·409

58· वही, पृ·414

59· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 8 सम्पा·डॉ·मुकुंद द्विवेदी, पृ·172, संस्क·1987

60· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खंड ‡रघुवंशम‡ सम्पा·-सीताराम चतुर्वेदी, पृ·93, संस्क·वि·सं· 2019

61· महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·77, संस्क·1988

62· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡कुमारसम्भवम्‡ - सीतामराम चतुर्वेदी, पृ·308, संस्क·वि·सं·2019

63· आठवाँ सर्ग - सुरेन्द्र वर्मा, पृ·7, संस्क·1976

64· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खंड ‡मालविकाग्निमित्रम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी पृ·262, संस्क·वि·सं·2019

65· संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक - डॉ·श्याम शर्मा, पृ·256, संस्क·1983

66· संस्कृत नाट्य-साहित्य - डॉ·जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ·17, संस्क·1969

67· कालिदास गंथावली - द्वितीय खण्ड ‡विक्रमार्वशीयम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·220, संस्क·वि·सं·2019

68· वही, पृ·243

69· वही, पृ·257

70· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड ‡अभिज्ञानशाकुन्तलम्‡, सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·23 संस्क·वि·सं·2019

71· वही, पृ·59

72· वही, पृ·67

73· वही, पृ·145

74· वही, पृ·150

75· संस्कृत साहित्य का इतिहास - शिवबालक द्विवेदी, पृ·98, संस्क·1976

76· Classical Sanslkrit Literature - A.B.Keith, P.23, Ed.1966

It is to his dramas, above all to the Sakuntala, the finest work in classical sanskrit literature, that Kalidasa owes his greatest renown, but in the lyric and epic also he takes the first place among Indian poets.

77· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡मेघदूतम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·396, संस्क·वि·सं·2019

78· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड नाटक सम्पा·सीताराम चतुर्व्रेदी, पृ·13, वि·सं·2019

79· संस्कृत नाट्य-साहित्य - जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ·69, संस्क·1976

80· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡ऋतुसंहारम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·454, संस्क·वि·सं·2019

81· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡रघुवंशम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·158, संस्क·1976

82· वही, पृ·158

83· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡कुमारसम्भवम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·270, संस्क·वि·सं·2019

84· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड ‡अभिज्ञान-शाकुन्तलम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·70, संस्क·वि·सं·2019

85· कालिदास ग्रंथावली - तृतीय खण्ड ‡समीक्षा‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·51, संस्क·वि·सं·2019, पं·करूणापति त्रिपाठी ‡कालिदास और प्रकृति‡

86· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡कुमारसम्भवम्‡ सम्पा. सीताराम चतुर्वेदी पृ. 234 संस्क. वि.सं. 2019

87· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡कुमारसम्भव‡ सम्पा·-सीताराम चतुर्वेदी, पृ·237, संस्क·वि·सं·2019

88· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड ‡अभिज्ञान-शाकुन्तलम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·13, संस्क·वि·सं·2019

89· वही, पृ·71

90· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡कुमारसम्भव‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·231, संस्क·वि·सं·2019

91· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड ‡मालविकाग्निमित्रम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·287, संस्क·वि·सं·2019

92· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खंड ‡रघुवंशम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·71, संस्क·वि·सं·2019

93· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खण्ड ‡अभिज्ञान-शाकुन्तलम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·14, संस्क·वि·सं·2019

94· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡मेघदूतम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·419, संस्क·वि·सं·2019

95· वही, पृ·409

96· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡रघुवंशम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·14, संस्क·वि·सं·2019

97· वही, पृ·26

98· कालिदास ग्रंथावली - प्रथम खण्ड ‡ऋतुसंहारम्‡ सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·435, संस्क·वि·सं·2019

99· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खंड ‡अभिज्ञान-शाकुन्तलम्‡ सम्पा·-सीताराम चतुर्वेदी, पृ·15, संस्क·वि·सं·2019

100· वही, पृ·33

101· कालिदास ग्रंथावली - द्वितीय खंड (मालविकाग्निमित्रम्), सम्पा·सीताराम चतुर्वेदी, पृ·262, सम्पा·वि·सं·2019

102 महाकवि कालिदास - डॉ·रमाशंकर तिवारी, पृ·331, संस्क·1988

103· वही, पृ·335

104· भारत का प्राचीन इतिहास - सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ·545, संस्क·- 1967